भक्त-कुसुम

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९९० प्रथम संस्करण ५२५०
मूल्य ।≈) पाँच आना

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

निवेदन

यह भक्तचरितमालाका सातवाँ पुष्प है। इसकी पहली, तीसरी, चौथी और पाँचवीं कथा भक्तचरितसे ली गयी है। दूसरी भक्तपरम्परासे और छठी कविचरित्रसे। कथाएँ सभी रोचक, शिक्षाप्रद और भक्तिवर्धक हैं। आशा है प्रेमी पाठक इनसे लाभ उठावेंगे।

गीताप्रेस, गोरखपुर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

ॐ

विषय-सूची

चित्र-सूची

श्रीहरिः

भक्त जगन्नाथदास भागवतकार

भक्त जगन्नाथदास जातिके ब्राह्मण थे और श्रीजगन्नाथपुरीमें निवास करते थे। विद्या, विनय और साधुस्वभावके होनेके कारण इनको लोग बहुत अच्छी नजरसे देखते थे। यद्यपि देखनेमें इन्हें कोई दुःख न था, परन्तु ये सदा चिन्तामें ही डूबे रहते थे। चिन्ता किसी सांसारिक भोग-वस्तुके प्राप्त करनेकी नहीं थी, वह थी भगवान्‌को पानेकी! वह चौबीसों घण्टे इन्हीं विचारोंमें रहते और बारम्बार भगवान्‌से प्रार्थना करते कि 'हे प्रभो! इस अपार भवसागरसे पार करनेवाले तुम्हीं एकमात्र कर्णधार हो, जबतक तुम्हारी कृपा नहीं होती तबतक किसी भी उपायसे जीवका उद्धार नहीं हो सकता। नाथ! मैं दीन, हीन, शक्तिहीन पामर प्राणी हूँ, मुझमें ताकत नहीं कि मैं मनको

विषयोंसे हटाकर आपके चरणोंमें लगाऊँ। मैं तो विषयविमोहित हूँ, मोहके सागरमें डूब रहा हूँ। तुम्हीं हाथ पकड़कर मुझे निकालो तो निकल सकूँगा। दयामय! मुझ-सा दीन और कौन होगा जो अपनी दीनताके प्रकट करनेमें भी असमर्थ है, जो दीनबन्धुके चरणोंमें उपस्थित होकर इतना भी नहीं कह सकता कि 'मैं दीन हूँ।' अभिमान सदा-सर्वदा दीनताका बाधक बना ही रहता है। मुझे अब कोई भी मार्ग नहीं सूझता। करुणानिधे! इस पतित प्राणीपर दया करो, अपने भजन करनेकी शक्ति दो और किसी दिन अपनी बाँकी झाँकी दिखाकर कृतार्थ कर दो।'

इस प्रकार प्रार्थना और चिन्तन करते बहुत-सा समय बीत गया। एक दिन रात्रिके समय एकान्तमें जगन्नाथदास बिछौनेपर पड़े हुए मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! बहुत दिन हो गये। अब तो अपनी कृपाकी एक किरण मुझपर भी डालो। मैं अधिकारी नहीं, इसलिये मुझे भक्ति और प्रेम मत दो, परन्तु अपनी इतनी महिमा तो बता दो कि जिससे मैं दृढ़ विश्वासके साथ तुम्हारा भजन कर सकूँ। हे दयामय! मैं तुम्हारे शरण हूँ। तुम्हारे सिवा लोक-परलोकमें मेरा कोई नहीं है। मारो या तारो, जो कुछ हूँ, तुम्हारा ही हूँ।' यों कहते-कहते और मनमें प्रभुका ध्यान करते-करते जगन्नाथदासको नींद आ गयी। आज दयामय-का हृदय द्रवित हो गया। भगवान् बड़े कोमल-हृदय और भक्त-वत्सल हैं। एक ही शब्दसे द्रवित हो जाते हैं। अवश्य ही

यह शब्द द्रवितचित्तसे निकला हुआ और सच्चा होना चाहिये। जिस दिन, जिस क्षण प्रार्थनामें भक्तका चित्त पिघल जाता है और वह भगवान्‌की कृपापर पूर्ण विश्वासकर अपनेको उनके चरणोंमें डाल देता है, बस, उसी क्षण भगवान् उसकी प्रार्थना पूर्ण कर देते हैं। आज जगन्नाथकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये शरणागत-भयहारी भगवान् शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज साकार स्वरूपसे स्वप्नमें जगन्नाथके सामने प्रकट हुए और हँसकर बोले—'प्यारे जगन्नाथ! तू किसलिये इतना घबरा रहा है? अरे, जिसने एक बार भी सच्चे हृदयसे मेरा आश्रय ले लिया, उसे भय कहाँ है?

सनमुख होहि जीव मोहि जबहीं। कोटि जनम अघ नासौं तबहीं॥

यह मेरा व्रत है। आज तेरा उद्धार हो चुका। तू निर्भय हो चुका। अब तू मेरा एक काम कर। 'भागवत' भवसागरसे तारनेके लिये एक सुदृढ़ जहाज है। मेरे भावसे पूर्ण होकर ही मेरे ही स्वरूप व्यासदेवने इसकी रचना की है। राजा परीक्षित शुकदेव मुनिसे इसी भागवतको सुनकर सहज ही भवसागरसे तर गया था। भागवत मेरा स्वरूप है। अतएव तू अपनी प्राकृत भाषामें इस महापुराणका समश्लोकी अनुवाद कर। इससे तू तो पवित्र होगा ही, अनेकों प्राणियोंको भी पवित्र कर सकेगा। जल्दीसे इस कामको करके जगत्‌का मङ्गल कर और मङ्गलमय बन।' इस प्रकार प्रभुकी आज्ञा मिलनेपर स्वप्नमें ही जगन्नाथदासने

कहा—'प्रभो ! मैं महामूर्ख हूँ । आपकी आज्ञाका पालन किस तरह कर सकूँगा ? अपार महिमावाले श्रीमद्भागवत-ग्रन्थका प्राकृत भाषामें अनुवाद मुझसे क्योंकर हो सकेगा ?' भगवान्‌ने उत्तर दिया—'बेटा ! घबरा नहीं । मेरी शक्तिसे क्या नहीं हो सकता ? तू निर्भय-चित्तसे ग्रन्थ-निर्माणके लिये तैयार हो जा और मैं तेरे हृदय-कमलपर बैठकर जो कुछ कहूँ, उसीको लिखता चला जा ।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये । जगन्नाथदासकी नींद टूटी । वह एकदम उठ बैठे । प्रभुके दर्शन होनेसे आज उनके आनन्दका पार नहीं है । परम विश्वासी भक्त कागज, कलम लेकर भगवान्‌की आज्ञा पालन करने बैठे, परन्तु लिखें क्या ? आँसुओंके प्रवाहसे सारे अङ्ग भीग गये । बाह्य दृष्टि रुक गयी । अन्तर्दृष्टिसे देखा, तो हृदयमें भगवान् अन्तर्विहारी विष्णुकी तेजोमयी दिव्य छवि विराजित दिखलायी दी । इन्द्रियोंके सारे दरवाजे बन्द हो गये । कलम चलने लगी और लगातार पन्ने-के-पन्ने लिखे जाने लगे । दूसरे दिन प्रातःकाल फिर यही दशा हुई । यों प्रतिदिन होते-होते कुछ समयमें सम्पूर्ण भागवतका परम रमणीय भाषामें पद्यानुवाद हो गया । अत्यन्त कठिन-से-कठिन मूल श्लोकोंपर भी कोमलकान्त पदावली रची गयी । तदनन्तर जगन्नाथदासने प्रभुके आदेशानुसार इस कल्याणकारी भागवतका गानकर मनुष्योंके पाप-तापका विनाश करना शुरू किया ।

जगन्नाथदास भागवतका कीर्तन करते हुए सारे देशमें घूमने लगे । उनका प्रेम और माधुर्य-भरा गायन सुनकर मनुष्य ही नहीं,

पशु-पक्षीतक भी मुग्ध होने लगे। प्रथम तो मधुर स्वरका सङ्गीत स्वाभाविक ही लोगोंके चित्तको खींचता है, फिर यदि वह केवल निष्कामभावसे भगवान्‌की आज्ञानुसार जीवोंके कल्याणके ही लिये गाया जाय और वह भी श्रीमद्भागवत-जैसे प्रेमामृतपूर्ण ग्रन्थ-का सार हो तो, उससे समस्त प्राणियोंके प्रसन्न होकर खिंच जानेमें आश्चर्य ही क्या है ? जगन्नाथदास जब रास्तेमें चलते हुए भागवतका गान करते, तब उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी झड़ी लग जाती, प्रेमके आवेशमें वाणी गद्गद हो जाती, शरीर लड़खड़ाने लगता, प्रत्येक अङ्गमें भक्तिकी तरङ्गें उछलती हुई दिखलायी देतीं। प्रेम और करुणापूर्ण मधुर स्वरसे दिशाएँ गूँज उठतीं। उनको इस अवस्थामें देखकर बालक, वृद्ध, युवा, पुरुष और स्त्री सभीके मन खिंच जाते और सभी लोग बड़े आदर-सत्कारके साथ अपने-अपने घरोंमें ले जाकर उन्हें घेरकर बैठ जाते और अपने प्यारे बन्धुके समान उनके मुखसे भगवान् श्रीकृष्णके परम मधुर चरित्रोंको सुन-सुनकर कृतार्थ होते। आज इसके तो कल उसके, यों घर-घरमें जगन्नाथदासके भागवतका गान होने लगा और लोग भगवान्‌की मधुर लीलाका आनन्द लूटने लगे।

दुष्टोंको न तो हरिचर्चा ही सुहाती है और न किसीका सम्मान ही उन्हें सुखदायी होता है। जगन्नाथदासका आदर-सत्कार ऐसे लोगोंकी दृष्टिमें खटकने लगा, उनकी निन्दाप्रिय जिह्वाएँ जगन्नाथदासकी निन्दा करनेके लिये लपलपाने लगीं।

किसीकी प्रशंसा सुनकर उसकी निन्दा करना, अच्छेमें भी बुरी बातका आरोपण करना तथा अकारण ही दूसरोंका अनिष्ट करना, यही खलोंका स्वभाव होता है। कौआ स्वभावसे ही उत्तम वस्तुओंको भ्रष्ट करता है। कुत्ते पवित्र वृक्षों, बेलों और स्थलोंपर पेशाब करते हैं, चूहे बिना ही किसी स्वार्थके लोगोंके कपड़े काट जाते हैं और साँप लोगोंको अकारण ही डँस जाता है परन्तु इसमें उसको कोई लाभ नहीं होता; इसी प्रकार दुष्टजन साधुओंकी निन्दा करने और उनपर दोष मँढ़नेमें ही सुख मानते हैं। तुलसीदासजी महाराजने ऐसे दुष्टोंके लक्षण बतलाते हुए कहा है—

खलहिं हृदय अति ताप बिसेखी। जरहिं सदा पर-सम्पति देखी॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहु परी निधि पाई॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बैर अकारन सब काहूसों। जो कर हित अनहित ताहूसों॥

पर-द्रोही पर-दार-रत, पर-धन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद॥

इसी स्वभावके कारण दुष्ट-मण्डलीका हृदय जगन्नाथदासका मान-सम्मान देखकर दग्ध हो गया। उसने जाल रचा और उनमेंसे कुछ लोगोंने जाकर राजा प्रतापरुद्रसे यह शिकायत की कि 'महाराज! आपकी इस पुण्यक्षेत्र पुरी नगरीमें आजकल बड़ा अनर्थ होने लगा है। जगन्नाथदास नामका एक पाखण्डी ब्राह्मण तुलसीकी माला पहनकर और तिलक-छापे लगाकर नगरके नर-

नारियोंको ठगता फिरता है, जहाँ-तहाँ नाचता-गाता है, स्त्रियोंमें जाकर बैठता है । सरल-हृदयकी स्त्रियोंके धन और धर्मको हरण करनेमें वह बड़ा ही चतुर है । उसके कारण पवित्र पुरी पाप-पुरी हो गयी है । आपको हमारी बातका विश्वास न हो तो आप गुप्त दूतोंको भेजकर इस बातका पता लगवा लीजिये । परन्तु यह अनर्थ अब जल्दी ही बन्द होना चाहिये ।' राजाको इन लोगोंकी बातोंपर विश्वास हो गया । उसने दूतोंके द्वारा पता लगाया । दुष्टोंने उन्हें साथ ले जाकर सैकड़ों स्त्री-पुरुषोंके घेरेमें बैठे जगन्नाथदासजीको भागवतका गायन करते दिखला दिया और कुछ दे-लेकर उनके द्वारा यह कहलवा दिया कि 'महाराज ! शिकायत सच्ची है, जगन्नाथदास वास्तवमें बड़ा अनर्थ कर रहा है और जगह-जगह उसकी पूजा हो रही है ।'

राजालोग राजमदके कारण प्रायः अन्धे-बहरे हुआ ही करते हैं । प्रतापरुद्रने तुरन्त जगन्नाथदासजीको पकड़वाकर मँगवा लिया और उनसे कहा—'अरे जगन्नाथ ! तू ऊपरसे तो साधु बना फिरता है और तेरे आचरण इतने दुष्ट हैं ! तू दिन-रात स्त्रियोंमें बैठकर न मालूम क्या-क्या गाया करता है । सच-सच बता दे, नहीं तो समझ ले कि तेरे जीवनके दिन पूरे हो गये हैं ।'

राजाके क्रोध-भरे वचन सुनकर जगन्नाथदासने क्षणभर भगवान्‌का ध्यानकर निश्चिन्तभावसे कहा—'महाराज ! द्वेषियोंकी बात सुनकर बिना स्वयं जाँच किये अकारण ही

निरपराधको सताना राजाका कर्त्तव्य नहीं है। मैं तो भागवतका गान करता हूँ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अन्त्यज कोई भी मुझे प्रेमसे बुलाता है, उसीके यहाँ जाकर भागवत सुनाता हूँ। मै बालक-वृद्ध या स्त्री-पुरुषका जरा भी विचार नहीं करता। भगवान्‌की दयासे मैं ब्रह्मचारी हूँ। पुरुषोंके लिये पुरुष और स्त्रियोंके लिये स्त्री-सदृश हूँ। मुझे देखकर किसीके मनमें विकार नहीं होता। भगवत्कृपासे मेरे मनमें भी कोई दूषित भाव कभी नहीं आये।'

जहाँ द्वेष-बुद्धि होती है, वहाँ सीधी बात भी उलटी प्रतीत होती है। राजा प्रतापरुद्रने पहलेसे ही जगन्नाथदासको दुराचारी समझ लिया था, अतएव उनके कथनका उलटा अर्थ लगाकर दाँत पीसते हुए राजाने कहा—'माळूम होता है, तू बड़ा ही दुष्ट है, कैसी बातें गढ़ी हैं ? तू पुरुषोंके पास पुरुषरूपमें रहता है और स्त्रियोंके पास जाते ही स्त्रीरूप बन जाता है; बड़ा सिद्ध है न ? तेरी यही सिद्धि मुझे देखनी है। मुझे भी दिखा अपना स्त्रीरूप ! यदि न दिखा सका तो याद रख, मैं ब्राह्मण जानकर तुझपर कुछ भी दया नहीं दिखाऊँगा।' इतना कहकर राजा प्रतापरुद्रने गुस्सेके आवेशमें ही सिपाहियोंसे कहा—'जाओ, इस कपटी दुराचारीको ले जाकर हथकड़ी-बेड़ी डालकर कैदखानेमें बन्द कर दो।' जगन्नाथदासजीने यह बात कभी नहीं कही थी कि मैं वास्तवमें ही स्त्रीरूप बन जाता हूँ। उनका तो भाव ही दूसरा था; परन्तु

राजाको न तो यह बात समझानेका उन्हें अवसर ही मिला और न उन्होंने इस अवस्थामें समझानेकी चेष्टा करनेमें कोई लाभ ही समझा। क्रोधके समय मनुष्य बुद्धिभ्रष्ट हो जाता है, उस समय उसे कोई समझाना चाहता है तो उसके गुस्सेका पारा और भी ऊपर चढ़ जाता है। अस्तु। राजा प्रतापरुद्र महलोंमें चला गया और सिपाहियोंने जगन्नाथदासजीको बाँधकर कैदखानेमें ले जाकर बन्द कर दिया।

प्रेमी भक्तके लिये स्वर्ग-नरक एक-से हैं, वह अपने स्वामीकी रुचि देखकर हर जगह उसको अपने साथ समझता हुआ सदा ही आनन्दमें मग्न रहता है। कहा है—

जो रुचि देखै रामकी, विलग होहि तत्काल।
नरक परैं दुख सहै पै, सुखी रहै सब काल॥
पच्यो करैं नरकाग्नि पैं, पल-पल बाढ़ै प्रेम।
प्रीतमके सुखसों सुखी, यही प्रेमको नेम॥
कहि न जाय मुखसों कछू, श्याम प्रेमकी बात।
नभ-जल-थल-चर-अचर सब, श्याम हि श्याम लखात॥

भक्त जगन्नाथ कारागारमें परम आनन्दसे प्रभुका ध्यान करने लगे। वे प्रेममें मतवाले कभी हँसते, कभी रोते, कभी उच्च स्वरसे कीर्तन करते, कभी दोनों हाथ उठाकर नाचते और कभी चुपचाप समाधिस्थ होकर बैठ जाते। एक बार न मालूम उनके मनमें क्या भाव आया, वे करुणाकी याचना करते-करते बड़े ही कातर

स्वरमें भगवान्से प्रार्थना करने लगे। उन्होंने कहा—'प्रभो! राजाने मेरी बातका उलटा अर्थ लगाया है, उसका उलटा अर्थ ही सच होना चाहिये। तुम्हारे यहाँ स्त्री-पुरुषका कोई भेद नहीं है। और न जीवमें ही स्त्रीत्व या पुरुषत्व है, यह तो तुम्हारी माया है। इस पुरुष-शरीरको एक बार स्त्री-शरीर बना देना तुम्हारे लिये मामूली खेल है। परन्तु इससे राजाको बहुत विश्वास हो जायगा और तुम्हारे गुणगानमें सुभीता होगा। यदि आपत्ति न हो तो ऐसा कर दो न मेरे मायापति!' प्राणनाथ प्रभुने जगन्नाथदासकी पुकार सुन ली। जगन्नाथदास प्रार्थना करते-करते बेसुध हो गये। देखते हैं कि स्वयं प्रभु उनके सामने खड़े हैं। जेलकी कोठरी असीम तेजसे देदीप्यमान हो रही है। भगवान्ने हँसते हुए अपना भक्तभयहारी करकमल जगन्नाथदासके मस्तकपर रखकर कहा—'वत्स! तेरी यही इच्छा है तो यही सही, मेरा तो काम ही भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करना है। मेरी अपनी तो कोई इच्छा होती नहीं, भक्तकी इच्छाको ही मैं अपनी इच्छा मान लेता हूँ। देख, अब तेरा शरीर नर-शरीर न रहकर नारी-शरीर हो गया है। अब फिर जब तू पुनः इसको पुरुष-शरीरमें बदलना चाहेगा, तभी यह पुरुष-शरीर बन जायगा।' भगवान् इतना कहकर अन्तर्धान हो गये। जगन्नाथदासका स्वप्न टूटा, परन्तु स्वप्नकी घटनाको प्रत्यक्ष सत्य देखकर उनके आश्चर्य और आनन्द-का पार नहीं रहा। प्रभुकी महिमा और भक्तवत्सलताका विचार-

कर जगन्नाथदास गद्गद हो गये। कृतज्ञतासे उनका हृदय भर गया। भगवान्के करकमलके स्पर्शको स्मरण करके वह अपनेको कृतार्थ समझने लगे। उन्होंने मन-ही-मन कहा—'अहा, जिनके चरणधूलिके स्पर्शसे पत्थरकी अहल्याका उद्धार हो गया, जिनके चरणस्पर्शसे शेषनागका मस्तक विचित्र मणियोंसे विभूषित हो गया, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि जिनके चरणोदकको आग्रहपूर्वक मस्तकपर धारण करते हैं, उनके करकमलका स्पर्श मुझे प्राप्त हो गया! मेरे सद्भाग्यकी समता आज कौन कर सकता है?'

भगवान्का स्मरण, कीर्तन और प्रार्थना करते-करते रात बीत गयी। सिपाहियोंने दरवाजा खोला। जगन्नाथदास बाहर निकले, परन्तु पुरुषके बदले सुन्दरी स्त्रीको देखकर सिपाही चकित हो गये। जगन्नाथदासने उन्हें आश्चर्यचकित देखकर उनसे कहा—'भाइयो! मैं वही जगन्नाथदास हूँ जिसको कल रातको तुम लोगोंने कोठरीमें बन्द किया था, प्रभुकी लीला बड़ी विचित्र है, उन्हींकी करुणासे मुझे यह स्त्रीत्व प्राप्त हुआ है। तुम मुझे अभी राजाके पास ले चलो।' सिपाही राजासे पूछकर स्त्रीरूपी जगन्नाथदासको राजमहलमें ले गये। राजा उनकी कमनीय कामिनीमूर्ति और रमणी-सुलभ अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको देखकर आश्चर्यमें डूब गया। वह विचार करने लगा कि 'क्या बात है? यह वही जगन्नाथ है या छल करके उसने किसी स्त्रीको भेज दिया है। यदि वास्तवमें वही है तो यह सारी सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिकी महिमा है। मैंने

ऐसे भक्तको कैदमें डालकर बड़ा अपराध किया, परन्तु ऐसा क्योंकर हो सकता है ? सम्भव है इसमें कोई चालाकी ही हो।' यों विचारकर और भलीभाँति जाँच कराकर राजाने कहा—'तेरा स्त्रीरूप ठीक है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। परन्तु तू वही जगन्नाथदास ही है, इस बातका मुझे क्या पता ? सम्भव है, वह किसी तरह जेलसे निकल भागा हो और अपनी जगह तुझे यहाँ भेज दिया हो। अतएव तू अभी मेरे सामने यहीं पुनः अपने पहले पुरुषरूपको प्राप्त हो जाय तो मैं समझूँ कि तेरा स्त्रीरूप ठीक है।'

राजाकी बात सुनकर जगन्नाथदासजीने आँखें मूँदकर प्रभुसे मन-ही-मन प्रार्थना की। तुरन्त ही वस्त्राभूषणसहित उनका स्त्रीरूप अदृश्य हो गया और वहीं करताल हाथमें लिये जगन्नाथदास हरिकीर्तन करने लगे। राजासहित सारा-का-सारा राजपरिवार और राजसभाके उपस्थित सदस्यगण आश्चर्यचकित हो गये। राजाने चरणोंमें प्रणामकर अपराधके लिये क्षमा-याचना की और भलीभाँति आदर-सत्कार करके कहा—'भक्त-चूड़ामणि ! यदि आपने मेरा अपराध क्षमा कर दिया हो तो उसके प्रमाणस्वरूप आप मुझे भागवत-सङ्गीत सुनाकर मेरे कानों और मनको पवित्र कीजिये और मुझे पापसमूहसे छुड़ाइये।'

भक्त तो स्वभावसे ही क्षमाशील और शान्त होते हैं, उन्होंने राजाको सान्त्वना देकर भागवत सुनाना आरम्भ किया। सारी राजसभा उनके भागवतका गान सुनकर मुग्ध हो गयी। राजा

प्रतापरुद्रका हृदय प्रेमसे द्रवित हो गया। कथा समाप्त होनेपर राजाने पुनः प्रणाम करके कहा—'प्रभो ! मैं आज आपकी शरण हूँ, मुझपर दया कीजिये और अपना शिष्य स्वीकार कीजिये।' तदनन्तर चन्दार्क नामक स्थानमें उनके लिये एक कुटिया बना दी गयी।

जगन्नाथदासजी हरिगुण गाते-गाते चले गये। इधर राजाने उन दुष्ट-बुद्धि साधु-निन्दक दुष्टोंको बुलाकर उन्हें यथोचित दण्ड दिया।

महान् भक्त जगन्नाथदासको नश्वर शरीर त्यागकर प्रभुकी परम सेवामें पधारे आज चार सौ वर्षसे ऊपर हो गये, परन्तु आज भी श्रीजगन्नाथपुरीमें समुद्र-तीरपर श्रीहरिदास ठाकुरकी समाधिके समीप ही उनका समाधि-मन्दिर विद्यमान है। आज भी उनके द्वारा रचित उड़िया भागवत-ग्रन्थ उड़ीसानिवासियोंके घर-घरमें देवता-की भाँति पूजित हो रहा है। लोग गुरु-मन्त्रकी भाँति उसका स्वाध्याय करते हैं, पढ़ते हैं और परम भक्तिभावसे उसकी व्याख्या की जाती है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय !

श्रीहरिभक्त हिम्मतदास

भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अटल अनुरागका उत्पन्न होना ही इस जीवनका प्रधान उद्देश्य है। इस उद्देश्यकी पूर्ति पूर्वसञ्चित सुकृत और भगवत्-कृपापर ही निर्भर है। भगवत्-कृपा उसी समय होती है जब मनुष्य निष्काम-भक्तिद्वारा उपासना करता है। निष्काम-भक्ति उत्पन्न होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रति श्रीगीतामें यह उपदेश दिया है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

इसी सर्वस्व अर्पणको अपना लक्ष्य बनाकर प्रत्येक जीव भगवच्चरणका अधिकारी हो सकता है। अस्तु।

प्राचीन कालमें मनुष्य दीर्घायु होते थे और यज्ञानुष्ठान, तपश्चर्या आदिसे भगवान्‌को प्रसन्न करनेमें सफल होते थे, परन्तु इस कलियुगमें वही भक्तवत्सल भगवान् केवल प्रेमसे प्रकट हो अपने भक्तोंको दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। इस प्रेमकी सच्ची उपासिकाएँ केवल गोपिकाएँ ही थीं, जिन्होंने 'प्रेम-भक्ति' उपासना-द्वारा जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णको वशमें कर नित्य दिव्यरसोंका आस्वादन किया। इनके पश्चात् इसी मार्गके अनुसरण करनेवाले भक्त-शिरोमणि सूरदास, तुलसीदास, नरसी मेहता, साधु तुकाराम इत्यादि हुए हैं। इन सबके चारु चरित्रोंका 'भक्तमाल' में भली-भाँति वर्णन है। आधुनिक हरिभक्तोंमें इसी श्रेणीके एक महात्मा हिम्मतदासजी ब्राह्मणकुलमें १९ वीं शताब्दीमें पन्नाराज्यके अन्तर्गत बरायछ नामक ग्राममें हुए हैं जो पन्नासे लगभग पाँच कोस है।

हिम्मतदासजीके पूर्वजोंकी भगवत्-भक्तिमें विशेष रुचि थी और उनका समय नित्य साधु-संग, कथा-पुराण, हरि-चर्चा आदिमें व्यतीत होता था। इसी कारण इनको भी युवा होनेके पूर्व ही साधु-सेवा और हरि-कीर्तनका अच्छा अवसर प्राप्त होता रहा, जिससे इनके हृदयमें बचपनसे ही प्रेमांकुर जम गया और दिन-दिन हरिचर्चा श्रवण करते-करते वही अंकुर बढ़कर एक सुदृढ़, विशाल प्रेमवृक्षके रूपमें परिणत हो गया।

युवा-अवस्थामें इनका विवाह किया गया। हरिकृपासे पत्नी सुशीला और पतिपरायणा मिली। इनके 'दयाराम' नामक एक पुत्र हुआ। ये दयारामजी श्रीमद्भागवतके अच्छे ज्ञाता हुए।

हिम्मतदासजीको भगवद्-गुण-कीर्तनसे विशेष प्रेम था। आप झाँझें बजाकर भगवद्गुणानुवाद करते-करते विभोर हो जाया करते थे। एक बार इनकी इच्छा पन्नाके श्रीयुगलकिशोर भगवान्के (पन्नामें अद्यापि वर्तमान हैं) दर्शन करनेकी हुई। इसलिये उन्होंने उसी समय मानसिक प्रण कर लिया कि मैं प्रतिदिन श्रीयुगलकिशोर-जीके दर्शन किया करूँगा। हिम्मतदासजी इस प्रणके पालनार्थ नित्य झाँझें बजाकर भगवद्भजन करते हुए पैदल ही दस मील पन्नातक जाकर भगवान्के दर्शन करने लगे।

एक दिन झाँझें बजाते हुए आप पन्ना जा रहे थे कि मार्गमें चार चोर मिले। उनमेंसे एकने बाबाजीके सम्मुख आकर कहा कि 'बाबाजी! क्यों चिल्ला रहे हो! हम लोग चोर हैं, जो कुछ आपके पास हो यहीं रख दो।' बाबाजी उसकी बातें सुनी-अनसुनी करके पूर्ववत् कीर्तन करते हुए आगे बढ़ने लगे। तब उस चोरने इनकी झाँझें छीन लीं और वह पूछने लगा कि 'जो कुछ लिये हो सब अभी बतलाओ।' बाबाजीको दर्शनकी चटपटी पड़ी थी, इधर यह झंझट सामने आ गया, बेचारे मन-ही-मन अपने इष्टदेव श्रीयुगलकिशोरजीका ध्यानकर कहने लगे—'प्रभो! आज इस दाससे क्या अपराध बन पड़ा जो मार्गमें ही यह विघ्न उपस्थित

हो गया ।' फिर कुछ सोचकर आप चोरोंसे बोले, 'भाइयो ! मेरे पास तो इन झाँझोंके सिवा और कुछ भी नहीं है । वे तो तुमने छीन ही ली हैं, मैं तो श्रीजीके दर्शनार्थ नित्य यही झाँझें बजाता हुआ जाता हूँ ।' चोरोंने भी समझ लिया कि यह कोई साधु है, मालदार आसामी नहीं । अतएव वे लोग झाँझ लेकर चल दिये । बाबाजीको झाँझोंके छिन जानेसे बड़ा दुःख हुआ । ये विचार करने लगे, बिना झाँझोंके श्रीहरि-कीर्तन कैसे हो सकेगा ? आज अधिक विलम्ब भी हो गया है । न जाने भगवान्के दर्शन हो सकेंगे या नहीं ? परन्तु अब करते ही क्या ? चुपचाप ख़ाली हाथ ही प्रभुका ध्यान करते हुए आगे बढ़े ।

कुछ ही आगे बढ़े होंगे कि भगवत्-इच्छासे वे चारों चोर अन्धे हो गये और बाबाजीको जोर-जोरसे पुकारकर कहने लगे, 'बाबाजी ! ओ बाबाजी !! हमलोग अन्धे हो गये हैं । हमारी आँखें अच्छी किये जाओ । ये अपनी झाँझें लिये जाओ ।' बाबाजीने जब पुकार सुनी तब झाँझें मिलनेकी प्रसन्नतासे तुरन्त ही लौट पड़े । चोरोंने ज्यों ही इनका पद-शब्द सुना त्यों ही वे चारों उनके चरणोंपर गिरकर विनयपूर्वक कहने लगे, 'महाराज ! हमलोगोंसे बड़ा अपराध हुआ, क्षमा कीजिये । हमने आपको पहचाना नहीं था ।' बाबाजीको इस आकस्मिक घटनापर अत्यन्त आश्चर्य हुआ । आप दयासे द्रवित होकर कह उठे—

चोरीसे मुख मोड़ियो, चोरनको नँदलाल ।
हमरी वस्तु दिवायके, चोरन करो निहाल ॥

कहते हैं, इतना कहते ही चोरोंकी आँखें पुनः ज्यों-की-त्यों हो गयीं। उन लोगोंने झाँझें बाबाजीको लौटा दीं और उन्हींको गुरु-स्वरूप मानकर चोरी-बटमारी सदाके लिये त्यागकर, भगवत्-सेवा-पूजामें जीवन व्यतीत करनेका संकल्प कर लिया।

देर हो गयी थी इससे बाबाजी अति शीघ्रतासे आगे बढ़े, परन्तु आप पन्ना उस समय पहुँचे जब श्रीयुगलकिशोरजीकी सन्ध्या-आरती, ब्यारी, शयन इत्यादि सब हो चुका था। तब आप मन्दिरमें प्रवेश करने लगे तब वहाँके चौकीदारोंने कहा, 'बाबाजी! अब तो पट बन्द हो गये हैं। इस समय आपको दर्शन नहीं हो सकते।' तब बाबाजीने श्रीजीका ध्यान करके यह साखी कही—

कपटिनकों लागे रहैं, हिम्मतदास कपाट।
प्रेमिनके पग धरत ही, खुलत कपाट झपाट॥

इतना कहते ही मन्दिरके पट अपने-आप खुल गये। उस समय इनको श्रीजीके प्रत्यक्ष दर्शन हुए। उसी समय आपने प्रेममें विह्वल होकर यह स्तुति की—

लागे रहौ निसि बासर नामसौं, छाये रहौ छपि देख बिहारी।
बैठे रहौ दरबार गुपालके, नीके लगैं गुन गान उचारी॥
तीनहू लोकके नायक हौ प्रभु, रामलला बैदेहि दुलारी।
'हिम्मतदास' सदा उरमें, बसवौ करौ राधिका कुंजबिहारी॥

इसके अतिरिक्त गीतगोविन्दके पद और अन्यान्य भजनोंसे आप श्रीजीकी स्तुति करते रहे। स्तुति करते-करते मङ्गला-आरती-

का समय आ पहुँचा । इसी अवसरपर महन्त गोविन्द दीक्षितजी भी, जो उस मन्दिरके अधिकारी थे, मन्दिरमें पहुँचे । उन्होंने जब यह समाचार चौकीदारोंसे सुना, तब वे अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए और हिम्मतदासजीके समीप जाकर, उनके दर्शनकर दण्डवत्-प्रणाम किया ।

तदनन्तर आज्ञा लेकर वे मङ्गला-आरतीकी तैयारी करने लगे । प्रातःकाल हो रहा था, उसी समय पन्ना-नरेश भी नित्य-नियमानुसार भगवान्के दर्शनको पधारे । उन्होंने भी जब महात्मा-जीके प्रेमसे श्रीजीके मन्दिरके पट अपने-आप खुल जानेका हाल सुना, तब महात्माजीको साष्टांग प्रणामकर यह प्रार्थना की कि 'महाराज ! आपको रोज-रोज बरायछग्राम आने-जानेमें बहुत कष्ट होता होगा, अतः आप यहीं निवास कीजिये । मैं आपके लिये एक ग्राम अर्पण करता हूँ । उसे स्वीकार कीजिये ।'

महात्मा हिम्मतदासजीको भगवान् पूर्ण सच्चिदानन्द पुरुषोत्तमके दर्शन हो चुके थे, अब इन्हें किसी वस्तुकी चाह नहीं थी ! इसलिये आप पन्ना-नरेशके प्रलोभनमें नहीं आये । मङ्गला-आरती हो चुकने-पर अपने ग्रामको लौट गये ।

इनके आश्रमपर साधु-अतिथियोंका अच्छा सत्कार होता था, जिससे इनके पास द्रव्यका संकोच सदा ही बना रहता था । आप अपने ग्रामके परमेश्वरी नामक वणिक्के यहाँसे निजके

और कभी-कभी साधु-समाजकी सेवाके लिये सामान उधार मँगवा लिया करते थे और उसका हिसाब पीछे चुकता कर दिया जाता था। एक बार ऐसा हुआ कि कहींसे एक साधुओंकी जमात इनके आश्रमपर आ पहुँची। इन्हें अतिथियोंसे असाधारण प्रेम था ही, तुरन्त उनका भलीभाँति आदरसहित आसनादिका प्रबन्ध कर दिया और भोजनादिके प्रबन्धके लिये बनियेके यहाँ पहुँचे। बनियेने उठकर बड़ी आवभगतसे इन्हें दूकानमें बैठाया और वह अपना हिसाब समझाने लगा। आप तो इस समय दूसरे ही कार्यसे आये थे। इन्होंने बनियेसे साधुओंके सत्कारके लिये सामान उधार माँगा। बनियेने कहा 'महाराज! आपपर मेरे बहुत-से रुपये निकलते हैं। जबतक पिछला हिसाब चुकता न हो जायगा तबतक मैं और उधार नहीं दे सकता।' उसका यह कहना ठीक ही था।

बेचारे अपना-सा मुँह लिये घर चले आये और धर्मपत्नीसे सब समाचार कह सुनाया। स्त्रीके पास उस समय केवलमात्र नाक-की नथ ही शेष रह गयी थी। उसने साधु-सेवाके निमित्त उस नथको ही गिरवी रखकर काम चलानेका आग्रह किया। महात्मा-जी उस समय बड़े असमंजसमें पड़े, सोचने लगे कि अच्छा हुआ, अब साधु-सेवामें कोई त्रुटि न रहेगी और इस बातका संकोच भी होता था कि केवल एक ही गहना उस साध्वीके पास था, उसकी

भी आज समाप्ति हो रही है । परन्तु किया क्या जाय ? साधु-सेवाव्रतीको तन, मन, धनसे सेवा करनेकी ही लालसा रहती है । इसलिये विना अधिक सोच-विचारके आप उस नथको लेकर सीधे वनियेके पास पहुँचे और उसे नथ देकर बोले, 'भाई ! तुम इसे गिरवी रखकर आजका काम चलाओ, तुम्हारा हिसाव पीछे कर दिया जायगा ।' वनियेने नथ लेकर महात्माको सब सामग्री दे दी । बड़े आनन्दसे साधु-सेवा हुई । प्रसाद पाकर साधु भजनानन्दमें लग गये । प्रातःकाल साधु अपनी राह चले गये । अस्तु !

महात्माजी नित्य-नियमानुसार नदी-किनारे गये । उनकी स्त्रीका यह नियम था कि वह प्रातःकाल उठकर पहले श्रीजीकी चौका-टहल करती, पूजाके पात्र धोकर सब सामग्रियाँ एकत्रित करती और फिर गृह-कार्यमें लगती । तदनुसार वह अपने काममें लग रही थी । इधर श्रीजीने लीला रची । वे हिम्मतदासजीका रूप धारणकर उस वनियेके घर गये और उससे बोले, 'भाई अपना रुपया लो और मेरी नथ मुझे दो ।' बनियेने अपनी वही देखकर कहा, 'आपपर कलकी रकमसहित पौने तीन सौ रुपये निकलते हैं, सो दे दीजिये और फिर हमारा और आपका आजतकका हिसाव चुकता हो जायगा ।' रुपये दे दिये गये, नथ बाबाजीको मिल गयी । उसे लेकर आप

हिम्मतदासके घर पधारे और स्त्रीसे बोले, 'यह नथ ले जाओ और पहन लो ! वह उस समय चौका दे रही थी । चौका देते हुए ही उसने कहा 'अभी-अभी तो आप धोती-लोटा लेकर नदी गये थे, इतनी देरमें ही यह नथ कहाँसे ले आये ? हिम्मतदासरूपधारी प्रभुने तुरन्त ही उत्तर दिया—'वाह ! हिम्मतदासको रुपयोंकी क्या कमी है ? यह नथ लो और पहन लो ।' स्त्रीने अन्दरसे कहा, मैं श्रीठाकुरजीका चौका दे रही हूँ, चबूतरेपर रख दीजिये। भगवान्‌ने कहा, 'नहीं, सुवर्णका गहना पृथिवीपर रखना उचित नहीं है । आओ जल्दी पहन लो ।' स्त्रीने प्रार्थना की, 'मेरे हाथ तो गोबरमें सने हुए हैं अतः आप ही कृपाकर पहना दीजिये ।' तब प्रभुने निज करकमलोंसे वह नथ उस भाग्यशालिनी ब्राह्मणपत्नीको पहना दी और आप बाहर आकर अन्तर्द्धान हो गये ।

इतनेमें ही बाबा हिम्मतदासजी भी स्नान करके घर लौटे । अपनी स्त्रीको नथ पहने देखकर आप बोले, 'भद्रे ! यह नथ तुम्हें कहाँसे मिली ?' स्त्रीने कहा, 'महाराज ! क्यों हँसी करते हो ? अभी-अभी आप ही तो पहनाकर गये थे । बुढ़ापेमें यह हँसी अच्छी नहीं लगती ।' बाबाजीको बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने फिर भी उससे कहा, 'मैंने तुम्हें यह नथ कब पहनायी ?' स्त्री बोली, 'महाराज ! अभी मैं अच्छी प्रकारसे हाथ भी नहीं धो

पायी हूँ । अपने ही हाथों अभी नथ पहनाकर आप बाहर गये थे ।' अब बाबाजी बिना ही कोई प्रश्न किये उस बनियेके पास पहुँचे और उससे पूछा, 'हमारी नथ तुमने किसके हाथ बेच डाली ?' उसने कहा, 'आप कहते क्या हैं ? अभी थोड़ी ही देर हुई आप ही तो नथ ले गये थे । यह देखिये बही रक्खी है और यह आपका हिसाब चुकता होनेके दस्तखत हैं ।' बाबाजीने बही देखकर आनन्दपुलकित तनसे गद्गदकण्ठ होकर कहा, 'भैया परमेश्वर ! तू बड़ा भाग्यवान् है । तुझे आज लीलामय भगवान्‌के दर्शन हो गये । तेरा परमेश्वरदास नाम आज सच्चा हो गया ।'

यह कहकर बाबाजी घर लौट आये और स्त्रीसे बोले, 'प्रिये ! तुम्हें और उस बनियेको आज श्रीजीके दर्शन हो गये । मैंने न जाने कौन-सा अपराध किया था जो मुझे नहीं हुए ।' इतना कहते-कहते बाबाजीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुपात होने लगा और वे भगवान्‌के विरहमें व्याकुल हो पृथिवीपर लोटने लगे । उस दिन उन्होंने कुछ भी नहीं खाया । दिनभर ध्यान-मग्न बैठे रहे । दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही उन्हें आकाशवाणी सुन पड़ी कि 'आजसे सातवें दिन तुम्हें वृन्दावनमें दर्शन होंगे ।' इतना सुनना था कि महात्माजीमें अद्भुत स्फूर्ति उत्पन्न हुई और आप तुरन्त उठकर अपनी झाँझें बजाते, कीर्तन करते, श्यामा-श्यामकी रट लगाते

वहाँसे चल पड़े। सातवें दिन वृन्दावनके समीप पहुँचे ही थे कि उधरसे वृन्दावन-विहारी श्रीकृष्ण महाराज भुवनमोहन नटवर-वेष धारण किये प्रकट हुए। दोनोंका साक्षात्कार हुआ। महात्माजीका शरीर पुलकायमान हो गया। प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। तन-मनकी सुध जाती रही। आप वेसुध होकर मुनिजन-दुर्लभ प्रभु-पद-पंकजोंमें गिर पड़े। प्रभु-मिलनके सुख-वर्णनका सामर्थ्य क्षुद्र लेखनीमें कहाँ ?

भगवान्‌ने इन्हें उठाकर हृदयसे लगाया और इनके सिरपर निज करकमल रख इनकी अलौकिक भक्तिकी सराहना करते हुए कहा—'तुमने सात दिन मार्गमें अन्नादिके बिना अत्यन्त ही कष्ट उठाया होगा, चलो, आओ, इस कदम्बवृक्षकी छाँहमें भोजन करें। फिर वृन्दावनके दर्शन हों।' प्रभुआज्ञा शिरोधार्य-कर इन्होंने थोड़ा-सा महाप्रसाद ग्रहण किया। भगवान्‌के दर्शन-सुखसे इनकी पूर्ण तृप्ति पहले ही हो चुकी थी। बाल-भोग हो जानेपर भगवान् बोले कि 'हम तुमसे फिर मिलेंगे। अब तुम आनन्दसे वृन्दावनके दर्शन करो।' ऐसा कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

भगवान्‌के पुनर्दर्शनके लिये उत्सुक महात्माजी वृन्दावनकी कुञ्जोंमें विचरने लगे। अन्तमें ये जिधर देखते उधर ही इन्हें युगलमूर्ति श्रीश्यामा-श्याम दीखने लगे, तब इन्होंने कहा—

जुगलरूप दरसैं सबै, मरकट विपिन मयूर।
'हिम्मत' ब्रज परसैं बिना, जियत जगतमें कूर॥

दूसरे दिन आप मनोहर घाटोंका दर्शन करते हुए श्रीयमुना-जीके तटपर पहुँचे। वहाँ क्या देखते हैं कि श्रीजी महाराज नवल हिंडोला झूल रहे हैं। आप तुरन्त ही समीप पहुँचकर श्रीजीको झूला झुलाने और गाने लगे—

नवल कुञ्ज यमुना निकट, हीरन जटित हिंडोर।
'हिम्मतदास' झुलावहीं, झूलत जुगलकिशोर॥

इस प्रकार उस त्रैलोक्यमोहिनी मूर्तिका दर्शनकर वे आनन्द-मग्न हो रहे थे कि श्यामसुन्दर अकस्मात् अन्तर्धान हो गये। तब महात्माजी भगवान्‌के दर्शनकी लालसासे मथुराजी होते हुए गोकुल पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने इन्हें ग्वाल-रूपसे दर्शन दिये। तदुपरान्त बाबाजी ब्रजके सभी पुण्य-स्थानोंका दर्शनकर, बारम्बार ब्रजरज स्पर्शकर और सिरपर धर श्रीवृन्दावन-विहारीकी अनुपम छटामें छके हुए प्रफुल्लित हृदयसे घर लौटे।

इस प्रकार महात्माजीने अपनी समस्त आयु केवल भगवत्-भजन एवं हरि-कीर्तनमें ही व्यतीत की।

बोलो भक्तवत्सल भगवान्‌की जय!

भक्त बालीग्रामदास

(१)

भगवान्‌के भक्तोंमें कोई ऊँचा-नीचा नहीं। वहाँ तो केवल प्रेमकी ही पूछ है। जिसने अपना तन-मन-धन प्रभुके श्रीचरणोंमें अर्पणकर अपने जीवनको प्रेममय बना डाला, वही भगवान्‌का परम प्रिय भक्त हो गया। बालीग्रामदास भी इसी प्रकारके भगवान्‌के एक अनन्य भक्त थे। श्रीजगन्नाथपुरीसे दो कोसपर बालीग्राम नामक एक छोटा-सा कसबा है। बालीग्रामदासका जन्म इसी गाँवमें हुआ था। उनका जन्म-नाम 'दासिया बावरी' था। यह जातिके भील और उनका पेशा कपड़े बुननेका था। घरकी स्थिति बहुत ही खराब थी, उनके कोई सन्तान नहीं थी। संसारमें उनके आत्मीय-स्वजनोंमें एक पतिव्रता पत्नी ही थी। स्त्री-पुरुष कपड़े बुनकर बड़ी ही गरीबीके साथ अपना पेट पालते थे। उनके आचार-विचार तो अपनी जातिके अनुकूल ही थे, परन्तु भगवद्भजनमें उन्हें बहुत ही रस मिलता था। गाँवमें कहीं भी किसी उत्सवपर भजन-कीर्तन होता तो वह वहाँ जरूर पहुँचते। यद्यपि उनको कीर्तनके भावों और अर्थोंका कोई ज्ञान नहीं था परन्तु कीर्तन सुननेमें उन्हें बड़ा ही आनन्द मिलता और वह गद्गद होकर आँसू बहाने लगते। इसी-

लिये जहाँ कहीं कीर्तन होता, वहीं वह सब कामोंको छोड़कर दौड़े जाते।

लगातार वर्षोंतक भगवन्नाम-कीर्तन सुनते-सुनते दासियाके मनका मैल मिट गया। उनकी भगवान्‌में रुचि उत्पन्न हो गयी और वह भगवत्कृपासे कुछ-कुछ भगवद्भावोंको भी समझने लगे। अब उन्होंने गुरु-मन्त्र लेकर भगवान्‌के भजन-पूजनमें और उनके पतितपावन कीर्तनके गाने-सुननेमें समय लगाना शुरू किया। भजनके प्रभावसे विवेक उत्पन्न हो गया और उनके निर्मल मनमें यह भाव आया कि 'संसारमें एक भगवान्‌को छोड़कर और सभी कुछ मायाका खेल है। सोने और लोहेकी वेड़ीके समान पुण्य और पाप दोनों ही बाँधनेवाले हैं। अतएव इनसे मन हटाकर भगवान्‌में मन लगाना ही कल्याणका एकमात्र साधन है।' इस प्रकारके विचारोंसे उनके हृदयमें संसारसे वैराग्य हो गया। वह भगवत्प्रेमके नशेमें झूमते हुए फिरने लगे। समयपर भोजन करने और सोनेकी भी सुधि उन्हें नहीं रही। कभी कुछ खानेको मिल गया तो ठीक, नहीं तो न सही। जिस घोर चिन्ताके चितानलमें मनुष्य जीते-ही-जी निरन्तर जलते रहते हैं उस चिन्ताका मानों दासियाके हृदयमें अभाव ही हो गया। अवश्य ही एक चिन्ता उनके हृदयको सदा-सर्वदा व्याकुल रक्खा करती थी। वह हमेशा यह विचार किया करते कि 'हाय ईश्वर, तूने मुझे बड़ी नीच-जातिमें जन्म दिया है, मैं हरिभक्तिका नाम भी नहीं जानता। मुझ नीचको श्रीहरिके देववन्दित चरणकमलोंकी पहचान कैसे होगी? हाय, क्या मेरा मनुष्य-जीवन व्यर्थ ही जायगा?'

(२)

यह कहा जा चुका है कि बालीग्राम कसबा पुरीसे दो ही कोसपर था। वहाँके लोग सदा ही पुरी आया-जाया करते थे। पुरीमें प्रतिवर्ष भगवान्की रथयात्राका महोत्सव बड़े ही धूम-धामसे होता है, उत्सवका आनन्द लूटनेके लिये दूर-दूरसे लाखों मनुष्य आया करते हैं, परन्तु दासियाने अबतक भगवान्की रथयात्राका दर्शन नहीं किया था। रथयात्राके दिन समीप थे, उनके गाँवसे होकर लोगोंके दल-के-दल श्रीजगन्नाथजीका जय-घोष करते हुए दर्शनको जा रहे थे। उन्हें देखकर दासियाने अपने मनमें सोचा कि 'हाय, कितनी दूर-दूरसे भगवान्के दर्शनको लोग आते हैं, किन्तु मैं ऐसा अभागा हूँ कि इतना नजदीक रहनेपर भी आजतक दर्शनसे वञ्चित रहा ! क्या मेरे भाग्यमें पतितपावन अधम-उद्धारक अनाथोंके नाथ श्रीजगन्नाथके दर्शन लिखे ही नहीं हैं ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। दयामय भगवान् मेरेलिये ही ऐसा क्यों करने लगे। यह मेरी ही नीचता है जो अबतक मैं दर्शनको नहीं गया। पर अब तो दर्शन किये बिना दूसरा काम ही नहीं करूँगा।' यों सोचकर वह अन्यान्य यात्रियोंके साथ जगन्नाथजीकी ओर चल पड़े।

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि श्रीजगन्नाथजीका नन्दीघोष नामक रथ गुँडिचेकी ओर जा रहा है। लाखों नर-नारी दर्शनके लिये इकट्ठे हो रहे हैं। सभीके मुखसे श्रीहरिनामकी जय-ध्वनि

हो रही है, हजारों मनुष्य नाच रहे हैं, हजारों गा रहे हैं, हजारों भाँति-भाँतिके बाजे बजा रहे हैं और हजारों ही भगवान्‌के रथके मोटे-मोटे रस्सोंको प्रेमसे खींच रहे हैं। इस हरि-प्रेमके आनन्द-दृश्यको देखकर दासियाका मन आनन्द-सिन्धुमें डूब गया। उन्होंने भी दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया और प्रेम-विह्वल नेत्रोंसे भगवान्‌के दर्शनकर 'जय जय श्रीजगन्नाथ' की ध्वनि की। तदनन्तर वह भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न हो गये। ध्यानकी गाढ़ स्थितिमें उन्होंने देखा कि शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे विभूषित, नीलकान्तमणि-सदृश सुन्दर भगवान् श्रीहरि मधुर मुसकानके साथ उनकी ओर करुण-दृष्टिसे देख रहे हैं और मानों उन्हें प्रेम-दान दे रहे हैं!

अब दासियासे नहीं रहा गया, उन्होंने दोनों हाथ उठाकर प्रभुकी ओर ताकते हुए गद्गदकण्ठसे कहा—'हे पतितपावन! हे मेरे प्रभो!! आपने जब दया करके मुझे अपने देव-दुर्लभ दर्शन दे दिये तो अब मैं पतित नहीं रहा। हे प्रभो! क्या आप पतितपावनको इन नेत्रोंसे देखकर भी कोई पतित रह सकता है? यदि अब भी मैं पतित ही हूँ, तो हे नाथ! सबसे पहले मेरा उद्धार करके आपको अपने पतितपावन नामकी सार्थकता करनी होगी। प्रभो! प्रभो!! मुझ-सरीखे पामर महापापीके भाग्यमें आपके दर्शन कहाँ? दयामय यह तो आपकी दया ही है कि जिसके प्रतापसे मैं आपकी दयाका पात्र बन सका हूँ। मुझे

निराश न करो मेरे नाथ ! अब तो इस अधमका उद्धार करना ही पड़ेगा । प्रभो ! मुझे अपना लो । मेरे सारे पाप-ताप सदाके लिये दूर कर दो । मेरे हृदयमें ज्ञानका दिव्य दीपक जला दो और ऐसे अलौकिक आलोकसे मेरे सारे अन्तर और बाहरको प्रकाशित कर दो कि जिसके प्रकाशसे मैं आपकी त्रिभुवन-प्रकाशक परम कमनीय मधुर रूप-छटाका सदा-सर्वदा दर्शन पाया करूँ । नाथ, क्या कहूँ, अब तो आपको मुझे अपनाना ही होगा । अपने नामको, विरदको सफल करना ही पड़ेगा ।'

एक दिन प्रेमविह्वल हठीले भक्त सूरदासने भी प्यारे श्यामसुन्दरसे हठ करके गाया था—

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं ।
कै हमहीं कै तुमही माधव ! अपुन भरोसे लरिहौं ॥
हौं तो पतित सात पीढ़िनकौ पतितै ह्वै निस्तरिहौं ।
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हैं विरद बिनु करिहौं ॥
कत अपनी परतीति नसावत मैं पायौ हरि हीरा ।
सूर पतित तबही लै उठिहै जब हँसि दैहौ बीरा ॥

दासियाको मानों भगवान्‌ने हँसते हुए 'तथास्तु' कहा । वह दण्डकी ज्यों जमीनपर गिरकर धरतीमें लोट-लोटकर बारम्बार प्रणाम करने लगे और अतृप्त नेत्रोंसे भगवान्‌की अप्राकृत सौन्दर्य-सुधाका पान करने लगे । तदनन्तर भगवान्‌की आज्ञा और

आश्वासनयुक्त वचन प्राप्तकर उनकी अनुमति ले वह वहाँसे अपने गाँवकी ओर चल पड़े ।

(३)

दासिया घर पहुँचे । पतिव्रता स्त्रीने स्वामीको आया देख हँसते हुए कहा—'अहो, आप रथयात्राके दर्शन कर आये, बहुत ही अच्छा हुआ । भूख लग रही होगी, रसोई तैयार है, हाथ-पग धोकर पहले भोजन कर लीजिये ।' दासिया बिना ही कुछ बोले पागलकी तरह हाथ-पैर धोकर खानेको बैठ गये । पर वह तो दूसरे ही भावोंमें मस्त थे, भगवत्प्रेममें तल्लीन थे, उनपर एक ऐसा सात्त्विक नशा छा रहा था जो बड़े-बड़े विद्वान्-तार्किकोंको स्वप्नमें भी नसीब नहीं होता । आज दासियाकी स्त्रीने एक नयी हँड़ियामें भात बनाये थे । उफान आनेसे भातके झाग बाहर हाँड़ीपर चिपक गये थे । भातपर तरकारी रखकर स्त्रीने वही हाँडी दासियाके सामने रख दी । दासियाको बाह्यज्ञान नहीं था, अतः उन्हें तरकारीके बदले हाँड़ीमें कुछ दूसरी ही चीज दीख पड़ी । काली हँड़ियामें सफेद भातोंपर काले शाकको इन्होंने अपने प्रभुकी आँख समझा और वह मन-ही-मन विचार करने लगे कि 'अहा ! यह तो उसी विश्वनियन्ताका वही श्वेत पद्मसदृश नेत्र है । अहा ! यह उस नेत्रका काला अंश है, उसके अन्दर यह सफेदी है और अहा ! इस सफेदीमें प्रभुकी काली-काली पुतली कैसी शोभित हो रही है !' भक्ति-भावके प्रबल आवेगसे दासिया-

का शरीर रोमाञ्चित हो उठा, उनकी वाणी रुक गयी और सहसा नेत्रोंके बाँधको तोड़कर प्रेम-नदीकी धारा प्रबल वेगसे बहने लगी। वह इस स्थितिमें न जाने कितनी देर अचल बैठे रहे। इसके बाद एक पगलेकी तरह व्याकुलचित्तसे एकदम उठकर खड़े हो गये और मन-ही-मन न जाने क्या बड़बड़ाने लगे। वह कभी हँसते, कभी रोते, कभी 'हा नाथ!' 'हा नाथ!' पुकार उठते और कभी सहसा आवेशमें आकर तालियाँ बजा-बजाकर नाचने लगते। उनकी ऐसी स्थिति देखकर बेचारी स्त्रीको बड़ा ही भय हुआ, उसने मन-ही-मन सोचा कि हो-न-हो पतिको या तो रास्तेमें कोई भूत लग गया है या किसीने जादू कर दिया है। वह व्याकुल हो उठी और एकदम घरसे बाहर निकलकर अड़ोस-पड़ोसके लोगोंको पुकारकर कहने लगी—'अरे! देखो तो मेरे पतिको क्या हो गया? वह श्रीजगन्नाथजी गये थे, रास्तेमें न मालूम क्या हुआ कि वे एकदम पगले हो गये हैं और जो मनमें आ रहा है वही बक रहे हैं। अरे, मेरा नसीब फूट गया! मैं अब क्या करूँ?'

भाग्यवती! तेरा नसीब नहीं फूटा। वह तो चमक उठा है और ऐसा चमका है कि जिसके लिये देवाङ्गनाएँ भी तरसती रहती हैं। जिनको देवदुर्लभ सौभाग्य प्राप्त होता है उन्हींका यों नसीब खुला करता है। अहा! तेरा स्वामी आज उस ऋषि-मुनि-वन्दित देवदेव जगन्नाथकी प्रेम-माधुरीमें उन्मत्त है कि जिसका

अन्तकालमें नाम भी बड़े पुण्योंके सञ्चित होनेपर मनुष्यके मुँहसे निकलता है !

जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं ॥

अस्तु, स्त्रीकी बात सुनकर लोगोंने उसे धीरज दिया और दासियाके पास जाकर कुछ लोग कहने लगे कि 'रे दासिया, तू यह क्या कर रहा है ? भोजन सामने रक्खा है और तू नाच रहा है, पागल तो नहीं हो गया ?' लोगोंने चारों ओरसे जब बार-बार इस तरह कहा, तब उनको कुछ बाह्यज्ञान हुआ। पागलपन कुछ उतरा समझकर लोगोंने कुछ अधिक पूछना शुरू किया, तब उन्होंने एक दीन-हीन कङ्गालकी भाँति दोनों हाथ जोड़कर रोते-रोते सबको सम्बोधन करते हुए कहा—'भाइयो, अरे तुम यह क्या कह रहे हो ? ज़रा सोचो तो सही, मुझे क्या चीज़ खानेके लिये कह रहे हो, क्या रथपर विराजित भगवान् श्रीजगन्नाथजीका यह पद्मनेत्र तुम लोगोंको नहीं दीखता ? अहा ! देखो, देखो, भगवान्‌की यह रतनारी आँख, यह उसके अन्दरका सफेद भाग और यह उसमेंकी काली-काली सुन्दर पुतली। अहा ! कैसी सुन्दर है ! कैसी मनोहर है !' इस प्रकार बोलते-बोलते वह भक्तिके आवेशसे विवश होकर फिर उन्मत्तकी भाँति नाचने-गाने लगे।

दासियाके घरके पास बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे और उनमें अच्छे-बुरे सभी प्रकारके मनुष्य थे। रथयात्राके कारण

बहुत-से रसज्ञ, भावुक, सन्त-महात्मा भी पुरी जाते हुए वहाँ ठहर गये थे। वे लोग दासियाकी इस भक्तिविह्वल पवित्र स्थितिको देखकर मुग्ध हो गये और कहने लगे—'भाई! तेरे निर्मल प्रेम-भावकी बलिहारी! ऐसा ऊँचा प्रेम तुझे कहाँसे प्राप्त हुआ? सचमुच तू श्रीहरिके मनको हरण कर लाया है। भाई, तू धन्य है! धन्य है!! आज तुझे देखकर हमलोगोंको बड़ा ही आनन्द हुआ है। आजसे हम तेरा नाम 'बालीग्रामदास' रखते हैं। तेरे जन्मसे यह गाँव कृतार्थ हो गया। हे माता दास-पत्नी! तुम अपने पतिके लिये कोई चिन्ता न करो, तुम सचमुच बड़भागिनी हो जो तुम्हें ऐसा भक्त पति प्राप्त हुआ है! तुम एक काम करो, हाँड़ीमेंसे भात और तरकारीको निकालकर किसी दूसरे बरतनमें अलग-अलग परोस दो, तब तुम्हारे पति भोजन कर लेंगे। अहा! जिसके मनमें प्रभुके तेजस्वी नेत्रने अपना स्थान कर लिया है वह क्या इस तरह भोजन कर सकता है? माता, इस लाल हाँड़ीके ऊपर झाग, अन्दर भात और उसके बीचमें रक्खी तरकारी क्या तुम नहीं देखती। तुम्हारे स्वामीको यह साक्षात् श्रीहरिके पद्मनेत्रके समान दीखता है, इसीसे यह इसे नहीं खाते!'

इतना कहकर साधु वहाँसे चल दिये। स्त्रीने उनके कथनानुसार भात और तरकारीको निकालकर अलग-अलग बरतनोंमें परोस दिया और भोजन करनेके लिये पतिसे प्रार्थना की। बालीग्रामदासका भाव बदला और वह भोजन करने लगे।

(४)

परन्तु अब यह दासिया दूसरे ही दासिया हो गये ! मामूली दाससे बदलकर त्रिभुवनपतिके दास बन गये, उनके विचारोंमें अद्भुत परिवर्तन हो गया । आजकल वे चौबीसों घण्टे भगवान्‌के ध्यानमें लीन रहते हैं । बाहरसे कुछ भी काम करते हैं, परन्तु उनके अन्दर तो एक ही ध्यान, एक ही चिन्तन चालू रहता है । वे जब सोते हैं तो श्रीप्रभुके अभय चरणकमलोंपर मस्तक टेककर सोते हैं, आँखें मूँदकर ध्यानमें उन्हींको देखते-देखते निद्रावश हो जाते हैं और जागते समय भी, वही छबीली छटा सामने रहती है । वे ध्यानमें ही सोते और ध्यानमें ही जागते हैं ।

एक दिन रातके समय वे सो रहे थे, उनका चित्त भक्त-चिन्तामणिके चरणकमलोंका चञ्चरीक बन रहा था, उसी समय वह घबड़ाकर पुकार उठे—'हा ! क्या शंखचक्रधारी भगवान् मुझपर कृपा नहीं करेंगे ? क्या मुझको उनके साक्षात् दर्शन नहीं होंगे ? इसी विचारसे उनके हृदयमें एक भयानक आग-सी लग गयी, वे अस्थिर हो उठे । चित्तमें भगवान्‌के दर्शनकी तीव्र और अत्यन्त उत्कट उत्कण्ठा उत्पन्न हो उठी ! अब क्षणभरका भी विलम्ब सहन नहीं हो सका । चित्त अस्तव्यस्त हो गया, ऐसी अवस्था हुई कि जिसका वर्णन वाणीसे तो हो ही नहीं सकता, किन्तु कल्पनामें भी नहीं आ सकता । समझने-समझानेके लिये दिग्दर्शन-मात्रको जलसे बिछुड़ी हुई मछलीकी दशाकी कल्पनाकर अनुमान

लगाया जा सकता है। वास्तवमें तो इस स्थितिको वही जानता है कि जिसके चित्तकी सारी वृत्तियाँ सब ओरसे सम्पूर्णभावेन सिमटकर सागराभिमुखी गंगाकी धाराकी भाँति अभिसारिका बन-कर प्रबल वेगसे अपने प्रियतमकी ओर प्रवाहित होती है। बड़ी भारी प्यास लगनेपर एक जलके सिवा और कुछ भी नहीं सूझता, परन्तु परमात्माके दिव्य दर्शनकी उत्कण्ठा उत्पन्न होनेपर भाग्यवान् मनुष्यका हृदय, उस पिपासुकी व्याकुल पिपासासे भी कितना अनन्त अधिक गुण तृषित हो उठता है इसको वही जानता है; और जानते हैं उसके परम प्यारे भगवान् जो भक्त-हृदयकी सच्ची व्याकुलताको पहचानकर तुरन्त ही प्रकट होकर उसे कृतार्थ कर देते हैं! भक्तिमती मीराने व्याकुल होकर गाया था—

मैं तो राम दीवानी मेरो दरद न जाणै कोय।

× × × ×

घायलकी गति घायल जाणै जो कोई घायल होय॥

× × × ×

मीराकी प्रभु पीर मिटै जब वैद साँवलिया होय॥

जिस शुभ क्षणमें भक्तका प्रेमविह्वल हृदय व्याकुलताके मूक स्वरोंमें इस प्रकार पुकार उठता है, उसी क्षण भगवान् उसके समीप उपस्थित हो जाते हैं। वे वहाँ न जाति-पाँति देखते हैं, न विद्या-बुद्धि देखते हैं और न कुल-आचारकी ही परवा करते हैं। पुकार सुनते ही दौड़ते हैं और प्यारे भक्तको हृदयसे लगाकर

कृपाके आँसुओंकी धारासे उसका अभिषेक करते हैं। आज दासियाकी प्रेम-पुकार सुनकर भगवान् उनके समीप आ पहुँचे। दासियाका आवेश उतरा, आँखें खुल गयीं और उन्होंने चकित, मुग्ध नेत्रोंसे अपने जीवनधन मनमोहन श्रीहरिको मन्द-मन्द मुस्कराते सामने खड़े देखा। नेत्रोंद्वारा प्रभुके रूपामृतका पानकर उन्होंने अपने अनेक युगोंकी पिपासाको शान्त किया। पता नहीं, कितने समयतक मन्त्रमुग्धकी भाँति वह भगवान्‌की दर्शन-मदिरामें छके रहे। फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रेमाश्रुओंकी धारा बहाते हुए बोले—'दयामय! उस दिन रथयात्राके समय ध्यानमें आपने जिस दिव्य मूर्तिसे दर्शन दिये थे, आज उसी तेजपुञ्ज अलौकिक मूर्तिमें आप मेरे सामने साक्षात् उपस्थित हैं। सचमुच आप बड़े दयालु हैं। प्रभो! आप निराधारके आधार हैं, अहो! सुर-असुर, गन्धर्व-किन्नर, योगीन्द्र-मुनीन्द्र आदि भी जिनके दर्शनको सदा तरसते रहते हैं वही प्रभु आज मुझ-सरीखे दीन-हीन, ज्ञानभक्तिविहीन कंगालके घर पधारे हैं। अहा! मैं प्रभुका कैसे सत्कार करूँ?'

प्यारे भक्तकी बात सुनकर दयामय प्रभुने मुस्कराते हुए मधुर वाणीसे कहा—'मेरे प्यारे! नीच हो या ऊँच, जो मुझपर प्रेम रखता है वह मुझे बड़ा ही प्यारा है। जो लोग स्वर्ग-सुख या किसी दूसरे पदार्थके लिये मेरी भक्ति करते हैं या उतनेहीके लिये मेरे साथ प्रेम दिखलाते हैं, वे मेरे हृदयको कभी पिघला नहीं

सकते, परन्तु जो निष्काम अनन्य प्रेमभावसे मेरा भजन करता है उसके लिये—उसके वियोगमें तो मैं स्वयं झूर-झूरकर मरा करता हूँ। मैं तेरे विशुद्ध भावपर बड़ा ही प्रसन्न हूँ और तेरी उसी प्रेम-डोरीसे खिंचकर यहाँ आया हूँ। हे प्रियतम! आज मैं तुझ-पर बहुत ही प्रसन्न हूँ, माँग ले, माँग ले दिल खोलकर मुझसे मनमाना वरदान!'

अहा! समस्त ऐश्वर्यके आधार साक्षात् सच्चिदानन्दघन प्रभु जिसके सामने खड़े हैं उसको फिर दूसरी किस वस्तुकी आकांक्षा रह जाती है? वालीग्रामदासने परम आनन्दसे प्रभुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर कहा—'मेरे नाथ, प्रभो! आपके चरणकमलोंको सामने देखते-देखते ही मैं मर जाऊँ; बस, मुझे यही चाहिये। हे प्रभो! मैं आपसे और क्या माँगूँ? पतितपावन! इसपर भी यदि आपका मन न मानता हो तो मुझे यही शुभ आशीर्वाद दीजिये कि मेरा मन-भ्रमर सदा-सर्वदा आपके पवित्र चरणकमलों-का मधुर मकरन्द ही पान करता रहे और जब-जब मैं आपका ध्यान करूँ तब-ही-तब आपके प्रत्यक्ष दर्शनका मुझे सौभाग्य प्राप्त हो। हे दीनदयालो! मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये।'

भक्तकी प्रेमभरी प्रार्थना सुनकर भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए और मन्द-मन्द हँसते हुए कहने लगे—'वत्स! तेरे जीवनको धन्य है, तुझ-जैसा निष्काम चित्तका भक्त बहुत ही दुर्लभ है। तेरी सारी प्रार्थना पूर्ण होगी। एक बात और, जब तू पुरी

आवेगा तब मैं मन्दिरके नीलचक्रपर बैठ जाऊँगा और उस समय तुझको मेरे जैसे दर्शनकी इच्छा होगी, वैसे ही दर्शन होंगे। तब तू मुझे जो कुछ भी पदार्थ देगा, उसे मैं बड़े ही प्रेमसे खाऊँगा।'

इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। भगवान् तो प्रेमके भूखे हैं। बिना प्रेमके छप्पन भोग ठुकराकर भगवान् प्रेमसे अर्पित की हुई शाक-भाजी बड़े आनन्दसे भोग लगाते हैं। स्वयं ही आपने कहा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(गीता ९।२६)

'मनुष्य यदि पत्र, पुष्प, फल या जल ही मेरेलिये प्रेमपूर्वक अर्पण करता है तो उस मेरे प्रेमका सम्पादन करनेवालेके द्वारा प्रेमपूर्वक दिया हुआ वह पदार्थ मैं स्वयं प्रकट होकर खा लेता हूँ।'

दीनता भक्तका सहज स्वभाव है, प्रभुके परम भक्त अपनेको 'तृणादपि सुनीच' ही मानते हैं। दासिया भी अपनी जातिको बहुत नीच मानते थे और इसी कारण इच्छा होनेपर भी उन्होंने भगवान्को कुछ खानेके लिये न कहकर केवल दर्शन देनेकी ही प्रार्थना की थी, परन्तु अन्तर्यामी भगवान्से भक्तके हृदयकी इच्छा कैसे छिपी रह सकती है? भगवान्ने इसीलिये बालीग्रामदाससे उपर्युक्त बातें कहीं। भगवान्की आज्ञा सुनकर बालीग्रामदास मनमें सोचने लगे। 'आहा! भगवान्की कितनी कृपा है, सचमुच

इतनी कृपाके कारण ही भक्त आपको कृपासागर कहा करते हैं। प्रभो ! धन्य है आपकी कृपाको और आपके स्वामीपनको !'

(५)

यों विचार करते-करते रात बीत गयी, सवेरा हुआ और शालीग्रामदास उठकर भगवान्‌के भोगके लिये विचार करने लगे। उन्होंने कुछ कपड़ा बुन रक्खा था, उसे बेचनेके लिये घरसे निकल पड़े और एक ब्राह्मणके दरवाजे जा पहुँचे। ब्राह्मण कपड़ा खरीदकर पैसे लेने घरके अन्दर गया। भक्त बाहर खड़े थे और भगवान्‌के प्रसादके लिये क्या ले जाना चाहिये, इसीपर विचार कर रहे थे। अकस्मात् उनकी नजर नारियलके पेड़की ओर गयी। उन्होंने देखा एक सुन्दर नारियल लगा हुआ है, उसीको भगवान्‌के लिये ले जानेका विचार किया और सोचने लगे कि ब्राह्मण कृपा करके मुझे यदि यह श्रीफल दे दें तो क्या ही अच्छा हो। यह इस पेड़का पहला ही फल है, इससे भगवान्‌को बड़ी ही प्रसन्नता होगी। इतनेहीमें ब्राह्मणने आकर पैसा लेनेको कहा। पर पैसा न लेकर शालीग्रामदास बोले—'हे देव ! दया करके मुझे यह नारियल दे दो और इसके जितने पैसे हों, कपड़ेकी कीमतमेंसे काट लो।' ब्राह्मणने रुखाईसे जवाब दिया—'ऐसा नहीं हो सकता, यह पेड़का पहला ही फल है, नहीं दिया जा सकता।' ब्राह्मणने यह कह तो दिया, फिर उसके मनमें विचार आया कि नारियल देनेसे पैसे बच जायँगे। इधर शालीग्रामदास बहुत ही

आग्रह करने लगे। उनके आग्रह और पैसोंके लोभसे ब्राह्मणका मन बदला। उसने कहा—'तू जब इतना आग्रह करता है, तो मुझसे नाहीं नहीं की जा सकती। लेकिन तू कितने पैसे देगा?' दासने कहा कि 'महाराज! पैसे तो सारे आपके ही हाथमें हैं जितने चाहें, ले लीजिये।' ब्राह्मणने सोचा कि दाँव तो अच्छा है, खूब कसके पैसे लेने चाहिये। तदनन्तर उसने कहा कि 'भाई, इस नारियलको देनेकी मेरी इच्छा तो बिल्कुल नहीं है। पर तेरे हठको देखकर कुछ-कुछ मन होता है। तुझे नारियल चाहिये तो ले ले, पर बदलेमें कपड़ेकी कीमत कुछ भी नहीं मिलेगी।' दासने आनन्दोल्लासके साथ कहा—'अच्छी बात है, जल्दीसे नारियल तोड़ दो।' ब्राह्मणने नारियल तोड़ दिया। शालीग्रामदास पासके ही तालाबमें नहाकर शुद्ध हो नारियल लेकर चल दिये। उन्हें इस समय बड़ा आनन्द है। भगवत्प्रेममें मस्त भक्त इस बातको भूल गये कि घरमें कुछ भी नहीं है और बिना पैसे घर जानेपर स्त्री-पुरुष दोनोंको भूखों मरना पड़ेगा।

शालीग्रामदास रोज जितना कपड़ा बुनते, उतना बेचकर उन्हीं पैसोंसे कुछ तो दूसरे दिनके लिये सूत खरीद लाते और जो कुछ बचता उससे रूखा-सूखा खाकर काम चलाते। आज कपड़ेकी कीमत बिल्कुल न मिलनेसे केवल एक दिन भूखों ही मरनेकी बात नहीं, किन्तु कलके लिये सूत भी लानेको पैसे नहीं रहे। प्रेममें तल्लीन होनेपर भविष्यका विचार कौन करे? अस्तु, ब्राह्मणसे नारियल लेकर दासजी सीधे पुरीकी ओर चल पड़े। रास्तेमें

उन्होंने पूजाकी सामग्री लिये एक ब्राह्मणको जाते देखा। उसे देखकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और वे कहने लगे कि 'हे देव ! तनिक मेरी प्रार्थना तो सुनो, तुम भगवान्‌की पूजा करने जाते हो तो कृपाकर मेरा यह नारियल भी लेते जाओ। इसको भी भगवान्‌के अर्पण कर देना, इसमें तुमको कोई तकलीफ तो नहीं होगी ?' ब्राह्मणने कहा—'भाई, तकलीफ कैसी ? इतनी सामग्री भगवान्‌को चढ़ायी जायगी, उसीके साथ यह नारियल भी चढ़ा दिया जायगा। लाओ, दो।' ब्राह्मणके वचन सुनकर वालीग्रामदासने बड़ी सरलतासे कहा—'महाराज ! मेरा यह श्रीफल आप इन सामग्रियोंके साथ निवेदन न करना। इसको तो अपनी सारी सामग्रियोंके अर्पण कर देनेके बाद याद करना। परन्तु यह श्रीफल भगवान्‌के सामने केवल रख ही देनेको नहीं है, इसे लेकर गरुड़स्तम्भके पास खड़े हो भगवान्‌का स्मरण करके यह कहना कि 'हे प्रभो ! वालीग्रामदासने आपके लिये यह श्रीफल भेजा है इसे ग्रहण कीजिये। महाराज ! इतना कहकर तुम वहीं चुपचाप खड़े रहना, कुछ बोलना नहीं। तुम्हारी प्रार्थना सुनकर भगवान् यदि अपने हाथसे श्रीफल ले लें तो दे देना, नहीं तो मेरा वापस लौटा लाना। महाराज, मेरी इस विनतीको भूल न जाना।'

वालीग्रामदासकी सरल और सच्ची बातोंको सुनकर संसारी विद्वान् ब्राह्मण हँस पड़े और बोले—'अच्छा भाई, ऐसा ही होगा।' यों कहकर उन्होंने नारियल ले लिया। ब्राह्मण बहुत ही सुशील, शान्त और श्रद्धालु थे, इसलिये दासने उनका विश्वास करके

उन्हें नारियल दे दिया और वह अपने घर लौट आये। ब्राह्मण प्रभुके मन्दिरमें पहुँचे। षोडश उपचारोंसे भगवान्‌की पूजा की। अपनी सारी सामग्रियाँ भगवान्‌के अर्पण कीं। तदनन्तर महाप्रसाद लेकर कुछ देर विश्राम करनेके बाद जब घर लौटने लगे, तब उन्हें वालीग्रामदासका श्रीफल याद आया और उन्होंने मन्दिरमें जाकर गरुड़स्तम्भके पास खड़े हो नारियल हाथमें लेकर भगवान्‌के सामने कहा—'हे प्रभो! आपके लिये वालीग्रामदासने यह श्रीफल भेजा है और कह दिया है कि यदि भगवान् स्वयं अपने हाथसे श्रीफल लें तो देना, नहीं तो लौटा लाना। अब आप या तो कृपा करके इस फलको स्वीकार कीजिये, नहीं तो मैं लौटा ले जाऊँगा।' इतना कहकर ब्राह्मण आँखें मूँद भगवान्‌का ध्यान करने लगे। भक्तवत्सल भगवान्‌ने हाथ बढ़ाया और ब्राह्मणके हाथसे नारियल लेकर भोग लगाने लगे। इस अद्भुत घटनाको देखकर पण्डितजी तो स्तब्ध हो गये। भगवान्‌के कर-स्पर्शसे उन्हें परम आनन्द हुआ, वे ध्यानमें तल्लीन हो गये। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी और वह मन-ही-मन वालीग्रामदासका स्मरणकर कहने लगे—'अहा! भक्त! तेरे अटल विश्वासको धन्य है! तुझको और तेरी जन्मदात्री बड़भागिनी माताको भी धन्य है! एवं तुझ-जैसे भक्तके आविर्भावसे वालीग्राम गाँव भी धन्यवादका पात्र हो गया है। अहा! पुरुषोत्तम भगवान् तुझपर पूर्ण प्रसन्न हैं, आज तेरा यह प्रेमपूर्ण श्रीफल भगवान्‌को निवेदन-

कर मैं भी धन्य हो गया हूँ। भक्त! प्रभुके प्यारे भक्त! तुझे धन्य है, धन्य है!!'

इस बातकी चर्चा फैलते ही बहुत-से लोग वहाँ इकट्ठे हो गये। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और सभी बालीग्रामदासकी और उसके प्रेमकी प्रशंसा करने लगे। ब्राह्मण अपने घर लौट आये और श्रीमन्दिरकी सारी घटनाएँ बालीग्रामदासको उन्होंने सुना दी।

(६)

दासियाको आज बड़ा ही आनन्द है। आज उनके मनमें दृढ़ विश्वास हो गया कि अखिल ब्रह्माण्डके नाथ नीच मनुष्यकी भी परम भक्तिभावसे दी हुई प्रत्येक वस्तुको ग्रहण करते हैं। अब उनका सारा संकोच जाता रहा। इस घटनासे उनके प्रेममें और भी वृद्धि हुई और अब वे स्वयं प्रसाद लेकर निःसङ्कोच प्रभुके पास जानेका विचार करने लगे। इतनेमें उन्हें नीलचक्रपर दर्शन देनेकी भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण हो आया और वह जानेको तैयार हो गये, परन्तु खाली हाथ कैसे जायँ? इतनेहीमें एक माली आमका टोकरा लिये बेचने आया। बड़े सुन्दर आमोंको भगवान्‌के भोगके योग्य समझकर भक्तने मुँहमाँगे दाम देकर उन्हें खरीद लिया। आमोंको दो टोकरियोंमें रख उन्हें काँवरमें लटकाया और कन्धेपर रखकर भक्तराज वहाँसे चल दिये। भगवान्‌के मन्दिरके पास पहुँचनेपर उनको पण्डोंने घेर लिया। सुन्दर पके हुए आम देखकर पण्डोंके मुँहमें पानी भर आया। उनमेंसे एकने

कहा—'भैया ! आम मुझे दे दे, मैं भगवान्‌को भोग लगा दूँगा ।' दूसरेने कहा—'जा, जा, तेरा क्या अधिकार है ? भोग तो मैं लगाऊँगा ।' इतनेमें तीसरा आकर पुकार उठा—'अरे, मेरे रहते किसकी ताकत है जो इन आमोंको भगवान्‌के भोग लगाये ।' आमोंके लालची, भगवान्‌के ठेकेदार बने हुए पण्डे आपसमें लड़ने लगे । बालीग्रामदास उनका यह ढंग देखकर घबराये । पण्डोंने जब छीननेका विचार किया, तब भक्तने हाथ जोड़कर कहा—'भाइयो ! ये आम आपलोगोंमेंसे किसीको नहीं मिल सकते । ये तो मेरे प्रभु खायँगे ।' इतना कहकर भक्त अपने भगवान्‌का चिन्तन करने लगे । पण्डे कुछ शान्त हुए और किसीको भी आम न देते देखकर बालीग्रामदाससे बोले कि 'भाई, जब भगवान्‌के लिये आम लाये हो, तब हमें क्यों नहीं देते ? यहाँ तो कोई कुछ भी लाता है तो पहले हमें ही देता है और फिर उसे हमीं लोग भगवान्‌के आगे रक्खा करते हैं । तुम हममेंसे किसी भी एकको ही दे दो । व्यर्थ देर क्यों कर रहे हो ?' पण्डोंके वचन सुनकर भक्तने हँसते हुए कहा—'यह आम मैं किसीको नहीं दूँगा । इन्हें तो मैं अपने हाथोंसे भगवान्‌को खिलाऊँगा । आपलोगोंको कोई दूसरा काम होगा । अतएव यहाँसे चले जाइये ।' इतना सुनते ही पण्डे आगबबूला हो गये और धमकाते हुए दाससे बोले—'पगला कहींका ! आया है अपने हाथसे भोग लगाने । भीतर घुस पावेगा तब न !' फिर

जरा नम्र होकर बोले—'भाई, भगवान्के लिये लाया है तो उनके सेवकोंको क्यों नहीं दे देता। हमलोगोंको दिये विना भगवान् कैसे भोग लगावेंगे? ला हमें दे दे।' पण्डोंके वचन सुनकर वालीग्रामदासको हँसी आ गयी और वह हाथ-पैर जोड़कर किसी तरह पण्डोंको राजीकर मन्दिरमें जा पहुँचे एवं भगवान्के श्रीनीलचक्रके दर्शन किये। नीलचक्रके सामने जाते ही भक्तके हृदयमें प्रेम उमड़ उठा। उन्होंने देखा वास्तवमें भगवान् नीलचक्र-पर विराज रहे हैं। वह हर्षविमुग्ध होकर पुकार उठे—'अहा हा! वही तो हैं, वही मेरे स्वामी, वही कृपासागर नाथ, इस रंकपर कृपाकर यहाँ आ विराजे हैं। प्रभो! धन्य है आपकी दयाको!' वालीग्रामदास ज्यों-ज्यों तल्लीनतासे भगवान्के दर्शन करने लगे त्यों-ही-त्यों भगवान्के भी माधुर्यका उत्तरोत्तर, अधिक-से-अधिक विकास होने लगा। मानों सौन्दर्यसागर आज मूर्तिमान् होकर नीलचक्रके ऊपर उमड़ आया! दास, प्रभुका प्यारा दास, नेत्रोंद्वारा भगवान्की सौन्दर्य-मदिराका पानकर उसकी मादकतासे मतवाला वन गया। वारम्वार साष्टाङ्ग प्रणामकर उन्होंने भगवान्-की स्तुति की। तदनन्तर दोनों हाथोंमें एक-एक आम लेकर भगवान्के सामने कर कहने लगे—'प्रभो! खाओ, खाओ, खूब खाओ! इस दासको कृतार्थ करो नाथ!' देखते-ही-देखते दोनों टोकरियाँ खाली हो गयीं। पण्डोंने पहले समझा था कि यह आदमी पागल है, परन्तु अब आमोंको अदृश्य होते देख उनके

आश्चर्यका पार नहीं रहा और उन्होंने समझा कि 'हो-न-हो यह कोई जादूगर है ।' क्योंकि उन्हें भगवान्‌को आमका भोग लगाते देखनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ ! वे सन्देहकर शालीग्रामदाससे पूछने लगे और शालीग्रामके यह कहनेपर कि 'आम भगवान्‌ने खाये हैं ।' वे आपसमें कहने लगे कि 'यह सब तो बातें हैं । कभी भगवान् भी यों आम खाते हैं ?' पर जब उन्होंने मन्दिरमें जाकर देखा कि रत्नवेदीके पास आमोंके छिलके और गुठलियोंका ढेर लगा है तब तो वे सभी अचरजमें डूब गये और शालीग्रामदासके समीप आकर उन्हें प्रभु-प्रसादकी माला पहना कहने लगे कि 'धन्य है आपके जीवनको ! आपने अपने विशुद्ध प्रेमसे भगवान्‌को वशमें कर लिया है ! अरे, हम तो केवल नाममात्रके सेवक हैं, सच्चे सेवक तो आप हैं । आज आप-जैसे भक्तके दर्शनकर सचमुच हम कृतार्थ हो गये ! अहा ! शास्त्रकी यह बात आज सर्वथा सत्य हो गयी कि भगवान् अपने भक्तके अधीन हैं ! वे भक्तिके वश हैं । भक्तिके नातेमें वे कोई भी ऊँच-नीचका खयाल नहीं करते ! भगवान् आपपर परम प्रसन्न हैं, इसीसे आपके फलोंका उन्होंने आनन्दपूर्वक भोग लगाया है । मनुष्य किसी भी बातमें कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, परन्तु यदि वह भक्तिहीन है तो भगवान् उसकी दी हुई सामग्रीको छूतेतक नहीं । आप धन्य हैं जो विश्वम्भर भगवान्‌को अपने हाथों आम खिला सके ।'

शालीग्रामदासने हाथ जोड़कर नम्रतासे कहा—'महाराज,

मैं तो अत्यन्त तुच्छ हूँ, नीच जातिका हूँ, मुझमें भक्ति कहाँ ? यह तो भक्तभावन पतितपावन भगवान्‌की और उनके भक्तोंकी कृपा है। आपलोगोंको धन्य है जो सदा भगवान्‌के चरणोंमें रहते हैं।' इस प्रकार कहते हुए वालीग्रामदास उनके चरणोंमें लोट गये और चरण-रजको अपने मस्तकपर लगाने लगे। वालीग्रामदास प्रेम-विह्वल हो पुकार-पुकारकर रोने लगे और बोले—'हे प्रभो ! अब मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगा। दयासागर ! कहाँ तो मैं नीच-जातिका महापतित अधम गँवार और कहाँ आप सच्चिदानन्दघन विश्वाधार परमात्मा ! नाथ, आज आपने मुझे प्रकट कर दिया। लोग मुझे क्या कहेंगे ? वे तो यही कहेंगे कि यह भगवान्‌का अनन्य भक्त है, तब मैं लज्जाके मारे अपना मुँह कहाँ छिपाऊँगा मेरे प्रभो ! कहीं लोगोंसे प्रशंसा सुनकर यदि मुझे अहंकार हो गया तो मेरी क्या गति होगी ? लोक-परलोक अन्धकारमय हो जायँगे। मैं अब क्या करूँ ? यहाँ तो भविष्य कभी आनेका ही नहीं। मुझे यही आशीर्वाद दो कि जहाँ कहीं भी मैं आपको स्मरण करूँ वहीं मुझे आपके दर्शन प्राप्त हो जायँ। हाँ, महाराज ! एक इच्छा है और वह बहुत समयसे है। मैं प्रभुके दसों अवतारोंके अभी प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ।'

भक्तके सच्चे हृदयकी शुभ अभिलाषा भगवान् कैसे अपूर्ण रख सकते हैं ? दयामयने दयाकर अपने दसों अवतारोंके दर्शन कराये और उन्हें आश्वासन तथा आशीर्वाद देकर विदा किया।

हरि-गुण गाते हुए भक्त उस मन्दिरको छोड़, हृदय-मन्दिरमें भगवान्‌का ध्यान करते हुए घर लौट आये।

आज बीसवीं सदीके शिक्षाके अभिमानी और जड़ बुद्धिवाद-का आश्रय लेनेवाले हमलोग भगवान्‌की इन लीलाओंपर अविश्वास-कर इन्हें कोरी कहानी कह बैठते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। किन्तु भक्तोंकी दृष्टिमें ऐसी बातें सर्वथा सत्य हैं और सत्य ही रहेंगी। अस्तु।

प्रतिष्ठाके भयसे डरकर वालीग्रामदास पुरी छोड़कर घर आये। पर यहाँ भी उनके पास आनेवालोंका ताँता लगा ही रहा। वालीग्रामदास अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जासे धरतीमें गड़े जाते थे। अन्तमें उन्होंने घरसे बाहर निकलनातक छोड़ दिया और वे केवल प्रभुके चिन्तनमें लीन हो रहे। अब वे श्रीहरिका स्मरण करने और उनके सामने हँसने-खेलने और नाचने-गानेके आनन्दमें ही अपना जीवन बिताने लगे। विश्वपतिकी प्रेरणासे उनके जीवन-निर्वाहके लिये कोई अभाव नहीं रहा। स्त्री-पुरुष दोनोंका सारा जीवन भगवान्‌के प्रेममें परम आनन्दसे बीता और नश्वर शरीरको छोड़नेके बाद दोनों दिव्यधाममें जाकर सदाके लिये भगवान्‌के चरणकमलोंके सेवक बन गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!
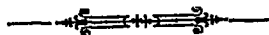
भक्त दक्षिणी तुलसीदासजी
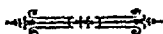
दक्षिणमें समुद्रके किनारे बसे हुए विजयापट्टण नामके नगरमें तुलसीदास निवास करते थे। वह जातिके क्षत्रिय थे। वह जैसे देखनेमें सुन्दर थे, वैसे ही उनका हृदय भी सुन्दर था। उनमें शारीरिक और मानसिक बल असाधारण था। साथ ही वह दाता भी बड़े भारी थे। प्राणदान करनेकी भी उनमें शक्ति थी। घुड़सवारीके लिये वह सारे प्रान्तमें प्रसिद्ध थे। उनकी उम्र भी अधिक न थी, परन्तु पूर्वजन्मके पुण्यके प्रभावसे थोड़ी उम्रमें ही उन्हें विषयोंकी अपेक्षा भगवान्‌में अधिक प्रीति लग गयी थी। घरमें रूप-गुण-शीला युवती स्त्री, अत्यन्त सुन्दर छोटे-छोटे दो बालक और एक कन्या थी, अवस्था भी अच्छी थी; परन्तु इतना सब होनेपर भी इनपर उनकी आसक्ति नहीं थी। कर्त्तव्य-पालनके भावसे ही उन्होंने संसारके साथ अपना सम्बन्ध बना रक्खा था। उनका मन सदा-सर्वदा भगवत्-कथामें, साधु-महात्माओंके सत्सङ्गमें और देव-दर्शनमें ही लगा रहता था। गाँवमें जहाँ कहीं भजन-कीर्तन या देव-महोत्सव होता, वहीं वह चले जाते और अपना

सारा समय उसीमें ही बिता देते। [illegible] सुनकर उन्हें अपूर्व आनन्द होता था। इसके सिवा भगवत्सेवाके अवसरसे ही विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंकी सहायता करना भी उनके जीवनका एक प्रधान कार्य था।

तुलसीदास-जैसे सरलहृदय तथा शास्त्रमें अटल श्रद्धा रखनेवाले मनुष्य बहुत थोड़े होते हैं। वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अनन्य उपासक थे। उनका धन, प्राण, मन सब कुछ भगवान् श्रीरामचन्द्रमें ही समाया था। श्रीरामचन्द्रजीकी कथा सुनते और सेवा करते समय वह इस संसारको बिल्कुल भूल जाते थे। भगवत्-कथा बाँचते अथवा सुनते समय उनके मनपर इतना अधिक असर होता कि वह उनके शरीरपर हाव-भावके रूपमें स्पष्ट झलकने लगता था। वह जब जिस भावकी कथा बाँचते या सुनते, तब उसी भावके चिह्न उनके चेहरेके ऊपर स्पष्टरूपसे स्फुरित हो उठते थे। इस कारण वह कभी हर्षमें तो कभी शोकमें डूबे रहते थे। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके जन्मसे लेकर विवाह-पर्यन्तकी विहारकी कथा सुनते समय उनके आनन्दका पार नहीं रहता। वनवासादिकी कथा सुनकर वह शोक-सागरमें डूब जाते। उनकी आँखें कभी आनन्दाश्रुसे तो कभी शोकाश्रुसे भरी ही रहती, आँखोंके आँसू कभी सूखते ही नहीं। इस प्रकार भगवान् रामचन्द्रके माहात्म्यकी कथाएँ बाँचने और सुननेमें वह अपने दिन सुखपूर्वक व्यतीत करते थे।

एक समय उनके गाँवमें रामायणकी कथा हो रही थी। गाँवके बहुतेरे मनुष्य कथा सुनने जाते थे; परम भक्त तुलसीदास भी वहाँ जाते और दूसरे लोगोंके साथ बैठे-बैठे कथा सुनते। सुनते-सुनते श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर प्रेम होनेके कारण उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बहा करती। वह सुननेमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि कभी तो बड़े जोरसे ठहाका मारकर हँस पड़ते थे, कभी फूट-फूटकर रोने लगते थे। कभी आनन्दमें आकर कूदने लगते थे तो कभी खड़े होकर हाथ और जंघाके ऊपर हाथसे थापी देकर छलाँग मारते थे। इस प्रकार रामायणमें जब जो विषय आता था उसी विषयके अनुसार उनके हृदयमें रौद्र और करुण आदि रस तुरन्त ही उत्पन्न हो जाते थे। एक दिन सीताहरणकी कथा आयी। पौराणिक महाराज श्रीसीताजीके हरणका वर्णन करने लगे। अब तुलसीदासके दुःखका पारावार न रहा। प्रथम तो वह श्रीरामचन्द्रजीके वनवासकी कथा सुनकर ही शोक-सागरमें डूबे हुए थे, अब माताका हरण सुनते ही फूट-फूटकर रोने लगे। जब रावण संन्यासीका वेष धरकर छल करके बलात्कारसे उन्हें हरणकर लङ्काकी ओर ले चला, तब तुलसीदाससे नहीं रहा गया। वह एकदम उछलकर खड़े हो गये, क्रोधसे उनका शरीर थर-थर काँपने लगा, आँखें लाल हो गयीं और सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। दो युगों पहलेका दृश्य मानों आज उनके सामने प्रत्यक्ष हो गया। उस समय वह तीव्र स्वरसे बोल उठे—'अरे! इतना साहस! मेरे सामने ही माताजीका अपहरण!

दुष्ट रावण ! मैं तेरे इस दुष्कर्मके लिये तुझे उचित दण्ड दूँगा और अपनी माताजीको छुड़ाकर श्रीरामचन्द्रजीके वाम अंगमें बैठाऊँगा । अरे, रावण ! तू कहाँ भागा जा रहा है ? दुष्ट ! खड़ा रह, खड़ा रह !!

इस प्रकार बोलते-बोलते वह अपने घरकी ओर चले । अत्यन्त क्रोधित होनेके कारण उनका स्वर अस्पष्ट हो गया था, अतः उनकी बात ठीक-ठीक किसीकी समझमें न आयी । उनके घोर गर्जन, विकराल आँखें और भयङ्कर भृकुटिको देखकर किसी-को उनके पास जानेका भी साहस नहीं हुआ । तुलसीदास अपनी धुनमें सीधे घर जाकर अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो तेज घोड़ेपर सवार हुए और रावणको मारकर सीतादेवीका उद्धार करनेके लिये चल पड़े । घोड़ेकी तेज चालके सामने तीरकी गतिकी भी कोई गिनती नहीं थी । देखते-ही-देखते वह क्षणभरमें सबकी नजरोंसे ओझल हो गये ।

इस प्रकार तुलसीदास दौड़े, परन्तु क्या वह अकेले ही थे ? नहीं, नहीं; ऐसा क्योंकर होता ? उनके साथ एक दूसरा साथी भी चला । वह कौन था ? वह था वही जिसे वह प्राणपणसे चाहते थे, जिसको उन्होंने अपना तन-मन-धन अर्थात् सर्वस्व समझ रक्खा था ।

तुलसीदासको दिशाका ज्ञान नहीं है, वह समुद्रके किनारेकी ओर बढ़ते जा रहे हैं । तुलसीदासके साथीने भी वही

राह पकड़ी। तुलसीदास पवन-वेगसे चलनेवाले घोड़ेपर सवार थे, तो उनका साथी मनसे भी अधिक वेगसे चलनेवाले घोड़ेके ऊपर सवार होकर जा रहा था। तुलसीदासके समुद्र-तीरपर पहुँचनेके पूर्व ही वहाँ पहुँचकर वह किनारेपर खड़ा हो गया। तुलसीदासको शरीरकी बिल्कुल सुध न थी। उनका मन तो एकमात्र सीतादेवीके उद्धारके विचारमें ही लगा हुआ था। उनके विलक्षण साथी यह पहलेहीसे जानते थे कि तुलसी-दास सीधे आकर समुद्रमें कूद पड़ेंगे; इसलिये वह मानो पहलेसे ही वहाँ पहुँचकर समुद्रसे मार्ग देनेको कहने लगे। तुलसीदासके साथीकी धारणा गलत नहीं थी। समुद्रका गम्भीर गर्जन, उसकी उछलती हुई लहरें और शुभ्र फेनका विकट हास्य इनमेंसे कुछ भी तुलसीदासको नहीं दीख पड़ा। दीखता भी कैसे ? उनका लक्ष्य भी तो इनके ऊपर न था। वह तो लङ्कामें जाकर रावणको मार श्रीसीताजीको लाकर श्रीरामचन्द्रजीके साथ उनका मिलाप करवाना चाहते थे।

उनके साथीने उनको वहीं रोकनेका विचार किया। परन्तु वह काम बिना स्थूल आकार धारण किये हो नहीं सकता था। इसलिये आपने मनुष्य-देहके आवरणमें अपनेको ढकनेका निश्चय किया और तुरन्त एक वृद्ध विद्वान् ब्राह्मणका वेष धारणकर पीछेसे तुलसीदासको बार-बार पुकारकर कहने लगे—'अरे! खड़े रहो, खड़े रहो! उतावले होकर समुद्रमें मत कूदो, मत कूदो!!'

परन्तु उनकी आवाज तुलसीदासको सुनायी नहीं दी। तुलसीदासका घोड़ा तेजीसे समुद्रकी ओर बढ़ा चला जा रहा था, इससे विप्ररूपधारी साथी विचारमें पड़ गये। पीछे रहनेसे कार्य सिद्ध होनेकी सम्भावना न थी इसलिये उन्होंने उनके आगे—सम्मुख जानेका विचार किया। उन मनोगामीको तुलसीदाससे आगे निकल जानेमें जरा भी देर न लगी। देखते-देखते वह तुलसीदासके सामने पहुँचकर कहने लगे—'अरे भाई! यह क्या करते हो? समुद्रमें कूदकर क्यों प्राण देनेके लिये तैयार हो रहे हो?'

तुलसीदास उनकी ओर बिना देखे ही क्रोधमें भरकर कहने लगे—'अरे तुम यह क्या कह रहे हो? जगज्जननी सीतादेवीको रावण हर ले जाय और मैं प्राण धारण किये यह दृश्य देखा करूँ? मैं अभी लङ्कामें जाकर रावणका उसके सारे कुटुम्बके साथ नाश करके जानकी माताका उद्धारकर उन्हें जगत्-पिता श्रीरामचन्द्रजीके वामाङ्कमें बैठा दूँगा।'

तुलसीदासके साथीने देख लिया कि वह किसी ऐसे भुलावेमें पड़नेवाले नहीं हैं। तथापि और भी एक-दो प्रयत्न करके देखनेका और इसपर भी यदि वह न समझें तो शीघ्र अपने दर्शन देकर भी उन्हें रोकनेका विचार किया। तत्पश्चात् उन्होंने तुलसीदासको पुकारकर पुनः कहा—'अरे, तुम तो पागल जान पड़ते हो, जान पड़ता है कि तुम्हारी सुध-बुध जाती रही है;

लङ्कामें जाकर रावणको तो मारोगे परन्तु पहले यह तो बताओ कि इस समुद्रको कैसे पार करोगे? पागलपन छोड़कर वापस घर लौट जाओ। व्यर्थ ही प्राण देनेसे क्या होगा?'

इतना सुननेपर भी तुलसीदास रुके नहीं। वह चले ही जा रहे हैं, सामने भी नहीं देखते।

अब वृद्ध ब्राह्मण-वेष-धारी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भक्तकी दृढ़तापर गद्गद होकर विचार किया, 'यह मेरा परम भक्त है। यों माननेवाला नहीं है, परन्तु एक बार और भी प्रयत्न करके देखा जाय, नहीं तो पीछे इसको साक्षात्कार कराना ही पड़ेगा।' ऐसा विचारकर वह तुलसीदासके पास जा पहुँचे और बोले—'वीर! तू धन्य है! धन्य है! तेरी वीरताकी बलिहारी है! परन्तु भाई, तू अब लङ्कामें जाकर क्या करेगा? किसको मारेगा? रावणको मारकर तेरे राम श्रीसीताजीको तो कभीके अपने घर ले आये।'

इतनेपर भी तुलसीदास पीछे न लौटे, उनका लौटनेका मन भी नहीं हुआ। वह पहलेके ही समान चलते हुए कहने लगे—'महाराज! क्षमा करो। मैं तुम्हारी बातपर विश्वास नहीं कर सकता। मुझे वापस लौटानेका व्यर्थ प्रयास क्यों कर रहे हो? चाहे अचल पर्वत चलायमान हो जाय, अग्नि शीतलता धारण कर ले, रातमें सूर्योदय हो जाय, जड पदार्थ बोल उठें और चन्द्रमासे अंगारें झड़ने लगें परन्तु यह निश्चय समझो कि

तुलसीदास यों कदापि नहीं लौट सकता। हाँ, एक उपाय है, यदि मेरे श्रीराम सीताजीको घर ले आये हों तो वे यहीं मेरे सामने प्रकट हो जायँ। मैं यहीं श्रीरामचन्द्रजीके वामभागमें जानकी माताको विराजमान तथा श्रीलक्ष्मणजीको हाथमें धनुष-बाण धारण किये देखूँ। इतना हो जाय तब मैं तुम्हारी बात मानकर घोड़ेको वापस फिरा सकता हूँ।'

भगवान्‌ने देखा कि भगवद्दर्शनके लिये जितनी दृढ़ता और एकाग्रता होनी चाहिये, उतनी तुलसीदासने सम्पादन कर ली है। यह दर्शनका अधिकारी हो चुका है। यों विचार करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने तुलसीदासको उसके इच्छित स्वरूपमें दर्शन देनेका विचार करके कहा—'तुलसी! तुलसी! देख! तुझको जो देखना है सो देख ले! देख ले!!'—इस प्रकार कहते हुए भगवान् तुलसीदासको पुकारने लगे। इन शब्दोंमें बड़ा आकर्षण था। अब तुलसीदाससे इस ओर देखे बिना न रहा गया। वृद्ध ब्राह्मणको एकाएक इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें बदले हुए देखकर उनके आश्चर्यका पार न रहा। वह घोड़ेसे उतरकर बारम्बार लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करने लगे और नृत्य करते हुए अपने भाग्यको सराहने लगे। आज अपने इष्टदेवके दर्शनसे तुलसीदासके मनमें आनन्द नहीं समाता। वह नाचते हुए पुकार रहे हैं—'अहो! अहो! मेरा कैसा धन्य भाग्य! धन्य भाग्य। आज मुझे अखिल ब्रह्माण्डके नायका दर्शन हो गया। अहा! मुझपर स्वामीकी

कितनी बड़ी करुणा है। प्रभु ! कितनी दया ! अहा ! कौन जानता है कि पूर्वजन्ममें मैंने कितना तप किया था ! कितने पुण्यतीर्थोंमें स्नान किया था और कितने दान-धर्मका व्रतानुष्ठान किया था कि जिसके पुण्य-प्रभावसे इस जन्ममें आज मुझे श्रीरघुवीरका दर्शन हुआ है ! नहीं, नहीं, पुण्यकर्मोंके फलसे प्रभु-दर्शन नहीं हो सकता। यह तो प्रभु-कृपासे ही होता है। प्रभो ! आपने बड़ी कृपा की। प्रभु ! प्रभु ! धन्य है ! धन्य है। धन्य है प्रभु ! बलिहारी है ! मैं आपके ही शरणमें हूँ ! मैं आपके ही अधीन हूँ।'

इस प्रकार कहते हुए तुलसीदास श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलोंमें लोट गये। श्रीभगवान् मुस्कराते हुए बोले—'बेटा तुलसीदास ! सच है सकाम पुण्यकर्मोंसे मेरा दर्शन नहीं होता। कामना तो मनुष्यके मनका भ्रम है। भ्रमसे किये हुए कार्यद्वारा यथार्थ वस्तु नहीं मिलती। जो निष्कामभावसे केवल अनन्य भक्ति-पूर्वक मेरा भजन करता है उसीको मेरे दर्शन होते हैं। वत्स ! मेरे लिये जब तू अपने-आपको भूलकर अपार महासागरमें आत्म-समर्पण करनेको तैयार हो गया, तब मैं तुझे दर्शन कैसे न दूँ ? तुलसी ! मैं तुझपर बहुत ही प्रसन्न हूँ। अब तेरी इच्छा हो सो माँग ले। मैं निःसन्देह तुझे वही दूँगा।'

श्रीप्रभुके दिव्य विग्रहका दर्शन करने तथा उनके श्रीमुखके अमृतमय वचनोंको सुननेसे तुलसीदासका मन तृप्त हो गया था।

उनकी समस्त इच्छाएँ आप ही पूरी हो गयीं। अब और क्या चाहिये ! वह क्या माँगें ? वह रो पड़े और रोते-रोते श्रीप्रभुको साष्टाङ्ग प्रणामकर कहने लगे—'प्रभु ! दीनदयालु ! वरदानका लोभ देकर क्या मेरी परीक्षा कर रहे हो ? मैं तो गिरा ही पड़ा हूँ, मेरी परीक्षा कैसी प्रभु ! ललचाओ मत ! इतनेपर भी यदि वरदान देना ही हो तो मुझे यही वरदान दो कि सोते-जागते, चलते-फिरते जब कभी आपके दर्शनके लिये मेरा मन व्याकुल हो तभी आपका साक्षात्कार हो। शुद्धि-अशुद्धि अथवा कालाकालका विचार न कर, जब मैं स्मरण करूँ, तभी आप सम्मुख प्रकट होकर मुझे कृतार्थ करें। इसके सिवा मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये।'

'तुलसीदास ! ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा।' इस प्रकार कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

तुलसीदास भी हृदयमें श्रीहरिको जगाकर जगत्को श्रीहरिकी विभूतिका ज्ञान करानेके लिये तीर्थयात्राको चल पड़े। अनेक तीर्थोंमें घूमते-घामते वह प्रेमधाम श्रीवृन्दावनमें आये। वृन्दावनमें वह वन-वन घूमने लगे। वनके हरिण और मोर उनके पास आकर प्रेमसे खेलने लगते। यह देखकर उनके आनन्दका पार नहीं रहता। उनका मन सदा आनन्दमय रहता और आँखें प्रेमाश्रुसे भींगी रहतीं। व्रजके बालक जब उनके पास आकर ताली बजा-बजाकर इस प्रकार गाते—

श्यामकुण्ड राधाकुण्ड गिरि-गोवर्द्धन।
मधुर-मधुर वंशी बाजे धन वृन्दावन॥

—तो उन्हें बहुत ही आनन्द होता। उन्हें अनुभव होने लगता मानो श्यामसुन्दरकी मुरलीकी मधुरध्वनि उनके कानोंमें प्रवेशकर अन्तःकरणको जागृत कर रही है।

इस प्रकार भ्रमण करते हुए वह एक दिन किसी कुञ्जमें जा पहुँचे। वहाँके महन्तजीका नाम गोपालदास था। महन्तजी बहुत अच्छे थे। देव-सेवा और अतिथि-सेवामें उनका दृढ़ अनुराग था। साधन-भजनमें भी प्रवीण थे। परन्तु इन सद्गुणोंके होते हुए उनमें एक बड़ा दोष रह गया था। वह दूसरे सम्प्रदायके वैष्णवों-को समान दृष्टिसे नहीं देखते थे और न समान रूपसे उनका आदर-सत्कार ही करते थे। जो 'राधाकृष्ण' कहता हुआ आता उसके लिये उत्तम भोजन तैयार कराया जाता और 'सीताराम' कहनेवालेको सिर्फ रूखा भात और रोटी दी जाती। तुलसीदास वैष्णव तो थे, परन्तु वह श्रीरामभक्त थे। इसलिये वह 'जय राम जय जय सीताराम' कहते हुए कुञ्जमें घुसे। इससे उनको भी प्रसादमें रूखा-सूखा भात और रोटी ही मिली।

पता नहीं, वृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानीकी क्या इच्छा थी। गोपालदास उनके राज्यमें रहकर इस प्रकारकी भेदबुद्धि रक्खें, यह शायद उन्हें ठीक नहीं लगा हो, इसीसे उन्होंने गोपालदासकी बुद्धि

शुद्ध करनेके लिये ही अनन्य भक्त तुलसीदासको वहाँ जानेकी प्रेरणा की होगी ।

साधारणतः तुलसीदासजी प्रायः उपवास किया करते, इच्छा होनेपर, उन्हें जो कुछ मिलता, उसीपर सन्तोषकर वह अपना काम चला लेते थे । इसलिये यह बात नहीं थी कि वह सूखा भात न खा सकें । परन्तु श्रीराधारानीकी प्रेरणासे आज उनसे बोले बिना न रहा गया । वह हँसते-हँसते गोपालदाससे कहने लगे—'महन्त-जी महाराज ! मुझे क्या यह सूखे भात ही खाने पड़ेंगे ? इतना घी, अन्न और दूसरे पदार्थ रक्खे हैं, ये किसके लिये हैं ?'

गोपालदासजी बोले—'भाई ! जो श्रीराधाकृष्णके नामका कीर्तन करता है उसीके लिये यहाँ उत्तम स्थान और उत्तम भोजनकी व्यवस्था है । दूसरोंको केवल भात और रोटी ही दी जाती है ।'

यह सुनकर तुलसीदासको बड़ी हँसी आयी और वह हँसते-हँसते बोले—'अच्छी बात है महन्तजी ! मैं आपके यहाँ 'सीताराम' कहता हुआ ही उत्तम भोजन करूँगा ।'

तुलसीदासकी यह बात गोपालदासको बिल्कुल ही नहीं रुची, वह एकाएक क्रोधित हो कहने लगे—'अरे जाओ, जाओ ! इतना गर्व अयोध्यामें दिखलाना । हाँ, एक बात है, यदि तुम अपने सीतारामको हमें दिखला दो तो समझा जाय कि तुम्हारा गर्व करना अनुचित नहीं है । यों तो तुम-जैसे व्यर्थ गर्व करने-

वाले और लम्बी-चौड़ी डींग हाँकनेवाले बहुतेरे साधु आते हैं। केवल डींग हाँकनेसे कुछ नहीं होता।'

महन्तकी बात सुनकर तुलसीदास पहले तो खूब हँसे। फिर बोले—'ठीक, महाराजजी! आप यथार्थ कहते हैं। अच्छा, मुझे एक बार श्रीमन्दिरमें जानेकी अनुमति देंगे?'

महन्त बोले—'क्यों नहीं? एक बार नहीं, हजार बार जा सकते हो। परन्तु तुमको अपना सीताराम हमें दिखाना पड़ेगा। इसके बाद तुम जैसा कहोगे वैसा ही किया जायगा।'

तुलसीदासने इस बार कुछ न कहकर सिर्फ हँसकर अपनी सम्मति बतलायी। श्रीमन्दिरमें प्रवेश करके उन्होंने मन्दिरका द्वार बन्द कर लिया, तत्पश्चात् वह श्रीराधाकृष्णकी युगलमूर्तिके समीप अपना दुःख निवेदन करने लगे और रोते हुए बोले—'हे नाथ! मुझे दृढ़ निश्चय है कि तुम्हीं कौसल्यानन्दन श्रीदशरथजीके पुत्र हो और तुम्हीं देवकीके पुत्र तथा नन्दनन्दन भी हो। तुम्हीं महाबलवान् धनुर्धारी श्रीरामचन्द्रजी हो और तुम्हीं इस जगत्को मोहित करनेवाले मुरलीधर श्रीकृष्ण हो। तुम्हीं अनादि, अनन्त जानकीवल्लभ हो और तुम्हीं भक्तोंके जीवनस्वरूप श्रीराधा-वल्लभ हो। प्रभो! तुम जगत्के मनुष्योंके कल्याणके लिये अनेक रूप धारण करते हो और अनेक प्रकारसे जगत्का प्रतिपालन करते हो। मेरे प्रभु! तुम्हारे-जैसा दयालु कोई भी नहीं।

अब मुझपर दया करो और एक बार श्रीरामावतारकी मूर्ति धारणकर अपना प्रबल प्रताप दिखलाओ।'

सच्चे भक्तकी सच्ची प्रार्थना भगवान् कभी अस्वीकार नहीं करते। देखते-ही-देखते श्रीराधाकृष्णकी प्रतिमा श्रीसीतारामजीकी प्रतिमाके रूपमें बदल गयी। उसे देखकर तुलसीदासने अत्यन्त आनन्दपूर्वक—'जय जय श्रीसीताराम' कहते हुए मन्दिरका द्वार खोल दिया। इस अद्भुत घटनाको देखकर सब विस्मय-सागरमें डूब गये। महन्तका मुँह फीका पड़ गया। एक भी शब्द उसके मुँहसे न निकल सका। आनन्दित होकर सबने भगवान्‌का दर्शन किया और साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया। महन्त-की प्रार्थनासे तुलसीदासने फिर श्रीमन्दिरमें प्रवेश किया और श्रीप्रभुसे पहले-जैसा श्रीराधाकृष्णका रूप धारण करनेकी प्रार्थना की। अविरत अश्रुप्रवाहसे उनका मुँह तथा वक्षःस्थल भींग गया। तुलसीदास आँखें मूँदकर श्रीप्रभुके चरणकमलोंमें प्रार्थना करने लगे। कुछ देरके बाद अश्रु-वेग कम होनेपर उन्हें दीख पड़ा, 'अहो! श्रीसीतारामरूप अब नहीं है, अब तो पहलेके समान श्रीराधाकृष्ण ही सिंहासनके ऊपर विराजमान हैं। भगवान्‌के मुस्कराते हुए मुखकमलको देखकर तुलसीदासको परम आनन्द हुआ। उन्होंने दोनों हाथ उठाकर श्रीप्रभुकी करुणाका जयजयकार करते हुए मन्दिरके पट खोल दिये। श्रीसीतारामकी मूर्तिको पुनः श्रीराधाकृष्णके स्वरूपमें परिणत देखकर गोपालदास

और अन्य वैष्णवोंके आनन्दकी सीमा न रही। आनन्दकी अधिकतासे किसीके मुखसे एक शब्द भी न निकल सका। इसी भावमें, इसी मौन-स्थितिमें बहुत समय बीत गया। तत्पश्चात् श्रीराधाकृष्णके चरणकमलोंमें प्रणाम करते हुए सब ऊँचे स्वरसे बोल उठे—'प्रभु! प्रभु! तुम्हें प्रणाम है! प्रणाम है! तुम और तुम्हारे भक्त दो नहीं हैं, दोनों एक स्वरूप हैं। हे प्रभु! इस संसारमें जो तुममें और तुम्हारे भक्तोंमें भेद-भाव देखता है, वह बड़ी भूलमें है। हे स्वामी! आज हमने प्रत्यक्ष देख लिया, आज हमें विश्वास हो गया कि भक्तके शरीरमें तुम्हीं विराजमान हो। जय प्रभु! जय, तुम्हारी जय! और तुम्हारे भक्तोंकी जय! जय प्रभु, जय! बलिहारी, प्रभु बलिहारी!'

ऐसा कहकर सभी तुलसीदासके चरणोंमें गिरने लगे। विनयकी आदर्श मूर्ति तुलसीदासने उन सबको यथामति उपदेश दिया और उनसे विदा हो प्रस्थान किया। भक्तको मान-सम्मानका बहुत ही भय रहता है। प्रतिष्ठासे वे सदा डरते हैं। और इसलिये ऐसे स्थानमें वे रहते भी नहीं। तुलसीदास भी इस प्रतिष्ठाके भयसे ही वहाँसे चल दिये। वह कहाँ गये और इसके बाद उनका क्या हुआ, इसका समाचार किसीको न मिला।*

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय।

---

* ये तुलसीदास श्रीरामचरितमानसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास नहीं हैं।

भक्त गोविन्ददास

संसारकी विचित्र गति है, इसमें आज जो अच्छा लगता है कल वही बुरा मालूम होने लगता है। वास्तवमें जो यथार्थतः अच्छा होता है वह तो कभी बुरा हो नहीं सकता, परन्तु सांसारिक वस्तुओंमें तो अच्छे-बुरेका आरोप हम अपने मनसे करते हैं। सत्य, कल्याणमय और सुन्दर वस्तु तो परमात्मा है जो

सदा एक-सा रहता है । किसी भी अवस्थामें उसमें परिवर्तन नहीं होता । गोविन्ददासजी भी उसी 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की खोजके लिये घर-संसार छोड़कर निकल पड़े हैं, उनकी संसारासक्तिका बन्धन पके आमकी भाँति टूट पड़ा है ।

भक्त गोविन्ददासजीका जन्म उत्तम ब्राह्मणवंशमें हुआ था । उनके घरमें पतिव्रता स्त्री, एक पुत्री और दो पुत्र थे । गोविन्ददासजी राज्यके दीवान थे । महल-मकान और बाग-बगीचोंकी इनके कमी नहीं थी, परन्तु इन भोगपदार्थोंसे उनको सुख नहीं मिलता था । वे संसारकी नश्वरतापर विचारकर मन-ही-मन कहा करते—'ओहो ! मेरे जीवनको धिक्कार है; मैं भगवान् सत्, चित्, आनन्द प्रभुमें मन न लगाकर अपने मनुष्य-जीवनको तुच्छ विषयोंकी सेवामें बिता रहा हूँ, संसारकी कोई भी चीज़ साथ नहीं चलती, सब कुछ यहीं रह जाता है । और जो कुछ है वह भी तो अपना नहीं है । संसारके प्राप्त विषयोंका मनुष्य अपनी इच्छानुसार भोग भी तो नहीं कर सकता । खानेको है, परन्तु स्वास्थ्य ठीक नहीं है, ऐसी अवस्थामें उसे और भी दुःख होता है । फिर संसारका सम्बन्ध भी तो स्वार्थका ही दीखता है, जबतक मनुष्यके पास धन-सम्पत्ति है तभीतक उसका आदर-सत्कार होता है । घरवाले भी तभीतक उसे पूछते हैं जबतक कि वह उन्हें कुछ कमाकर देता है । जब बुढ़ापा आ जाता है, धन-कमानेकी शक्ति नहीं रहती तब उसके द्वारा किसीका भी मनोरञ्जन नहीं होता ।

वह सबके लिये भाररूप हो जाता है । उस समय बन्धु-बान्धव सब अलग हो जाते हैं, कोई बाततक नहीं पूछता । बुद्धि भी मारी जाती है, क्या करते क्या कर बैठता है, लड़के-वाले दिल्लगी उड़ाते हैं । जीवनभर नाना प्रकारके संकट सहकर जो धन इकट्ठा किया था, उसपर भी दूसरे मालिक बन बैठते हैं, कमाये हुए धनका उपयोग भी अपनी इच्छानुसार नहीं हो सकता । आँखोंके सामने अपने मनके प्रतिकूल कार्योंमें धन खर्च होते देखकर दूना दुःख होता है । कैसी मूर्खता है ! इस प्रकारके क्षणभङ्गुर और दुःखपूर्ण संसारमें अबतक फँसा हुआ हूँ । सारे विश्वका सृजन और भरण-पोषण करनेवाले प्रभुकी भक्तिका तो मनमें कभी विचार भी नहीं आता । हाय ! जो प्रभु कामधेनुकी तरह सब जीवोंकी कामना पूर्ण करते हैं, असंख्य माताओंके स्नेहको लेकर जो सबका पालन-पोषण करते हैं, सारे संसारकी व्यवस्था और उसका सुचारुरूपसे सञ्चालन करते हैं, केवल भावमात्रसे ही जो प्रसन्न हो जाते हैं, मुझ-सरीखे पापीके जीवनको पुण्यमय बनानेकी जिनके सिवा अन्य किसीमें भी शक्ति नहीं है, जो विना ही कारण मुझपर सदा दया करते हैं, ऐसे अति मधुर नित्य-नूतन सदा एकरस भगवान्‌का भजन छोड़कर दूसरे कामोंमें मन लगाना कितना बड़ा प्रमाद है !' यों विचार करते-करते एक दिन उन्होंने निश्चय कर लिया कि 'बस, अब जो कुछ जीवन बचा है, वह सब प्रभुकी सेवामें ही लगाऊँगा, संसार और घरका त्यागकर केवल प्रभु-भजन

ही करूँगा। वह देखो, मेरे नाथ मुझे कितने स्नेहसे अपनी ओर बुला रहे हैं, अब तो मैं उन्हींकी शरण जाऊँगा, उन्हींकी आज्ञाका पालन करूँगा और उन्हीं आनन्दकन्द नन्दनन्दनके पदारविन्दकी रजका सेवन करके कृतार्थ होऊँगा।'

सच्चे वैराग्य और विवेककी प्रेरणासे घर-संसारका त्याग करना कोई आसान बात नहीं है। विचार तो बहुत लोग करते हैं, परन्तु वास्तविक त्याग होता नहीं है। कहीं जोशमें आकर त्याग भी देते हैं, तो फिर उस त्यागको निबाहना बहुत कठिन होता है। जैसे हवा भर जानेपर बैलून ऊपर-ही-ऊपरको उड़ता है परन्तु हवा कम होते ही नीचे गिरने लगता है, इसी प्रकार क्षणिक जोश उतरते ही त्यागकी वृत्ति नष्ट होने लगती है। भगवान् और उनकी कृपा तथा शक्तिपर विश्वास, दृढ वैराग्य और इन्द्रियोंके महान् संयमसे ही त्यागका जीवन निभ सकता है।

भगवान्ने गीतामें कहा है कि जो श्रद्धावान् होता है, भगवान्के परायण होता है और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उसीको तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है। भगवान्की महिमापर श्रद्धा हुए बिना भोगोंसे वैराग्य नहीं होता। और वैराग्य इन्द्रिय-संयम बिना टिकता नहीं। भक्त गोविन्ददासजीका भगवान्पर दृढ़ विश्वास और इन्द्रियोंपर पूरा काबू था, इसीसे उनका त्याग सच्चा था और इसीसे उन्होंने त्याग किये हुए भोगोंकी ओर कभी नजर नहीं फिरायी। घरका त्याग करनेके बाद गोविन्ददासजी

प्रभुका स्मरण करते हुए उनके पवित्र धामों—तीर्थोंमें परिभ्रमण करने लगे ।

प्रेमका यह नियम ही है कि जिसपर प्रेम होता है, उसकी हर एक चीज, उसके रहनेका स्थान, सोनेकी जगह, भोजनकी सामग्री, पहननेकी जूतियाँ, यहाँतक कि उसके नामकी चर्चातक बड़ी प्यारी, बड़ी मीठी लगने लगती है । जो भक्त भगवान्से प्रेम करता है, उसको वे स्थान बड़े ही प्रिय और मधुर मालूम होते हैं जो उसके प्रेमास्पद प्रभुको प्रिय हैं, जहाँ प्रभुने विविध लीलाएँ की हैं। वह उन स्थानोंमें जाता है, वहाँकी धूलिको उठा-उठाकर हृदयसे लगाता है और मस्तकपर धारण करता है । वहाँकी प्रत्येक चीज उसे प्रेममयी दीख पड़ती है और वह चारों ओर केवल आनन्द ही देखता और प्राप्त करता है । 'अहा ! यह धीर-समीर, यह यमुनापुलिन, यह निकुञ्ज-कानन, यह सेवाकुञ्ज, यह रास-स्थली, मेरे प्यारे जहाँ नित्य नयी लीला करते थे, कैसी सुन्दर हैं, कैसी मनोहर हैं, कैसी मधुर हैं !' यों विचार करते ही प्रभुकी लीलाका दृश्य उसकी आँखोंके सामने आ जाता है, वह मुग्ध होकर वहीं रम जाता है, अश्रुपात करता हुआ गद्‌गद कण्ठसे प्रभुके प्रेमका प्रलाप करने लगता है । भगवत्-प्रेमके भिखारी भक्त इसी हेतु तीर्थोंमें विचरते हैं और वहाँके दृश्योंको देख-कर तथा अपने प्यारे प्रभुके प्यारे भक्तोंका सङ्गकर परम आनन्द लाभ करते हैं । प्यारेका प्यारा मनुष्य, प्यारेकी प्यारी वस्तु, प्यारेका

प्यारा स्थान, प्यारेकी प्यारी बोल-चाल, उस प्यारेसे प्यार करनेवाले प्रेमीको कितनी प्यारी होती है, इसका न तो उल्लेख हो सकता है और न अनुमान ही। यह तो अनुभवकी चीज है। हमारे गोविन्ददासजी भी इसी हेतुसे तीर्थ-यात्रा कर रहे हैं।

आजकलकी तरह उस समय तीर्थ-यात्रा सैरकी या 'नीच करतूति' की लीलास्थली नहीं थी, गोविन्ददासजीकी तीर्थ-यात्राका चित्र देखिये। वे ऊँचे स्वरसे 'हरि' 'हरि' पुकारते और प्रेममें झूमते हुए जा रहे हैं, मनमें कहीं ममता या अहंकारका नाम नहीं रह गया है, मान-अपमान तथा सुख-दुःखमें समान भाव है, प्राणि-मात्रमें समदृष्टि है, उनकी दृष्टिमें छोटा-बड़ा कोई नहीं, सभी प्रभुके स्वरूप हैं। प्राणोंमें आनन्द भरा है। आहार-निद्राकी स्मृति नहीं है। चिकना-रूखा, साग-पात, कन्द-मूल जो कुछ हरि-इच्छासे मिल जाता है उसीको भगवान्‌के निवेदन करके खा लेते हैं। किसी-किसी दिन वह भी नहीं मिलता, तो भी उनको कोई शोक नहीं है। प्यास लगती है और कहीं कुआँ, बावड़ी, तालाब, नदी मिल जाती है, वहीं पानी पी लेते हैं। नहीं मिलते तो प्यासे ही रह जाते हैं। धूप और वर्षाको सहन करते हैं। न पासमें कोई सामान है और न सामान बटोरनेकी कल्पना ही है। मस्त हुए चले जाते हैं। कहीं-कहीं तो उन्हें पागल समझकर लोग दुत्कारने और मारने दौड़ते हैं, गाँवसे निकाल देते हैं, परन्तु इससे उनको कोई दुःख, क्रोध या क्षोभ नहीं होता।

वे मन-ही-मन प्रभुकी लीला देख-देखकर हँसते और प्रसन्न होते हैं।

इस चालसे तीर्थ-यात्रा करते-करते गोविन्ददासजी क्रमशः गया, गोमती, काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, अयोध्या, हरिद्वार, बदरिकाश्रम, द्वारका, प्रभास, श्रीरङ्गक्षेत्र, सेतुबन्ध रामेश्वर आदि पवित्र तीर्थोंकी यात्रा समाप्त करके एक दिन अपने मनमें विचारने लगे कि 'बस, अब प्रभुके अनन्य सेवक, प्रभुसे भी बढ़कर पूजनीय, भगवान् श्रीलक्ष्मणजीके दर्शन करके कृतार्थ होना है। भक्तोंकी भक्ति भगवान्की भक्तिसे भी बढ़कर सुख-शान्तिदायिनी हुआ करती है, फिर श्रीलक्ष्मणजी तो साक्षात् भगवान्के ही अंश हैं।' यह विचारकर वह श्रीलक्ष्मण-क्षेत्रकी ओर चले।

चलते-चलते गोविन्ददासजी लक्ष्मण-क्षेत्रकी सीमाके कुछ समीप आ पहुँचे। मार्ग बहुत ही दुर्गम, निर्जन, हिंसक जीवोंसे पूर्ण और घोर अरण्यमय था। गोविन्ददासजीने अकेले ही भयानक जंगलमें प्रवेश किया। झिरमर-झिरमर पानी बरस रहा था, सारे रास्तेमें कीचड़ और फिसलाहट हो रही थी। गोविन्ददासजीका बूढ़ा शरीर, कई दिनोंसे उन्हें कुछ खानेको नहीं मिला, इसपर सारा शरीर पानीसे भींगकर तर हो गया। कड़ी सर्दी पड़ रही थी, गोविन्ददासजीका शरीर काँपने लगा, उनके दाँत बजने लगे, शक्ति जाती रही, वे चलते-चलते ही अशक्त होकर एक

पेड़के नीचे गिर पड़े, उठनेके लिये बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सब निष्फल। गोविन्ददासजीका मनोबल पूर्ववत् था, वे पड़े-पड़े हृदयमें श्रीलक्ष्मणजीका ध्यान करते हुए मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे—'हे भगवन्! आप करुणाके सुमेरु हैं, आप ही सबके गुरु, ज्ञानदाता, हितकारी और माता-पिता हैं, आप जो कुछ करते हैं, सब मङ्गल ही करते हैं, आपकी इच्छा पूर्ण हो। हे प्रभो! आप अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके नाथ हैं, आप श्रीरघुनाथजीके लघु भ्राता हैं, आपके तेज, रूप और बलकी समता कौन कर सकता है? आप अनन्त हैं, अनन्त मूर्ति धारण करके जीवोंके भीतर-बाहर फैले हुए हैं। मैं आपके चरणोंकी शरण हूँ। मेरी रक्षा कीजिये। मैं जीवनके लिये, जगत्के तुच्छ भोगोंको भोगनेके लिये जीना नहीं चाहता। हे दीनबन्धो! एक बार आपके श्रीमुखके दर्शन करनेकी उत्कट अभिलाषा है। बस, आपके चन्द्रमुखका एक बार दर्शन कराकर फिर चाहे सो कीजिये, बिना दर्शन यह प्राण न छूटें, बस, इतनी ही प्रार्थना है।'

भक्तके हृदयमें भगवान् बसते हैं, उनसे हृदयकी कोई बात छिपी नहीं। फिर भक्तमें प्रेमकी एक अद्भुत आकर्षिणी शक्ति होती है, जिसके प्रभावसे भगवान्को आकर्षित होकर भक्तके समीप आना ही पड़ता है। आज भक्त गोविन्ददासजीका दुःख दूर करनेके लिये श्रीलक्ष्मणरूपी भगवान् भीलका स्वरूप धारणकर हाथमें जलती हुई मसाल लेकर जङ्गलमें प्रकट हुए और गोविन्द-

दासजीसे कहने लगे—'अहा ! आपको बहुत जाड़ा लग रहा है, जरा मसालसे तापकर स्वस्थ हो जाइये ।'

प्रेमभरे शब्द कानोंमें पड़ते ही गोविन्ददास चौंक उठे, उन्होंने देखा, एक परम सुन्दर मनमोहन भील जलती मसाल हाथमें लिये पास बैठा है । उन्हें बड़ा हर्ष हुआ, उन्होंने भीलका उपकार मानना चाहा परन्तु सर्दीके मारे जीभ सिकुड़ गयी थी, अतः वे एक शब्द भी नहीं बोल सके । उनकी आँखोंसे कृतज्ञताके आँसुओंकी धार बह चली । कुछ ताप लेनेपर बदनमें जरा गर्मी आयी, तब बड़ी मुश्किलसे गोविन्ददासजीने गद्गद कण्ठसे कहा—'भाई, मुझमें उठनेकी शक्ति नहीं है, जरा हाथ पकड़कर मुझे बैठा दो ।'

भीलरूपी श्रीरङ्गनाथजीने हँसते-हँसते मसाल एक ओर रखकर हाथ पकड़कर गोविन्ददासजीको उठाकर बैठा दिया, भीलके हाथका स्पर्श होते ही गोविन्ददासजीके शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी, शरीर पुलकित हो गया और सारी थकावट तथा पीड़ा स्वप्न टूटनेकी भाँति अदृश्य हो गयी । शरीर और जीभमें पूरी ताकत आ गयी । गोविन्ददासजीने कहा—'भाई ! बूढ़ा हो गया हूँ, मरनेमें मुझे तनिक भी दुःख नहीं है । परन्तु मेरे मनमें एक इच्छा बड़ी प्रबल है । मैं श्रीरङ्गनाथजीके दर्शन करना चाहता हूँ, इसीलिये शरीरको बचा रहा हूँ । आज तुमने मुझपर बड़ा ही उपकार किया, इसके लिये मैं किन शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट

करूँ, कृतज्ञता प्रकट करनेकी चीज भी नहीं है, अधिक क्या कहूँ, आज मैं तुमको धर्मका पिता मानूँगा, तुम आजसे मेरे धर्म-पिता हुए।'

यों कहकर गोविन्ददासजी मन-ही-मन सोचने लगे कि 'जरूर यह करुणामय भगवान्‌की कृपाका फल है, नहीं तो इस निर्जन अरण्यमें कहाँसे भील आकर मुझे जीवन-दान देता! धन्य प्रभो! तुम्हारी अपार लीला है।'

गोविन्ददासजीके हृदयका आनन्द उनके मुखपर फूट निकला, उन्होंने हँसते हुए कहा, 'धर्मपिता! तुम्हारा नाम क्या है, तुम कहाँ रहते हो? तुम्हारा घर यहाँसे कितनी दूर है, यहाँ तुमको इस समय किसने भेज दिया? इस घोर संकटके समय, बरसते पानीमें इस जङ्गलमें तुमने आकर जो मुझे प्राणदान दिये हैं, इसका बदला मैं करोड़ जन्मोंमें भी नहीं दे सकता। मेरे लिये तुमको बहुत तकलीफ उठानी पड़ी है।' गोविन्ददासजीके इन वचनोंको सुनकर भील मुस्कराया और धीरेसे वहाँसे खिसक गया। गोविन्ददासजी प्रभुकी करुणापर विचार करते-करते ध्यानमग्न हो गये। उनका हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया। ध्यानकी मस्तीमें उन्हें शरीरकी भी सुधि नहीं रही। कुछ समय पश्चात् जब बाह्य ज्ञान हुआ तब उन्हें भूख-प्यासका पता लगा। उन्होंने सोचा, यहाँ इस घोर वनमें, जहाँ मनुष्यके दर्शन भी दुर्लभ हैं, खानेको कहाँसे आवेगा? पर तुरन्त ही इस चिन्ता-को छोड़कर वे 'श्रीराम कृष्ण हरि' कीर्तन करने लगे। जो गर्भ-

में बालककी रक्षा करते हैं, काठके अन्दर क्षुद्र कीड़ेको भी खाना पहुँचाते हैं, वे भगवान् विश्वम्भर भक्तको भूखा कैसे रहने देते ? दीनानाथ लक्ष्मणजी अबकी बार एक ब्राह्मणका वेश धारणकर गरमागरम खिचड़ी, शाक, दही आदि लेकर प्रकट हुए और गोविन्ददासजीके पास जाकर उनसे बोले—'ब्राह्मण देवता ! मालूम होता है, तुम्हें भूख लगी है । लो, मैं भोजन लाया हूँ, इसे खाकर तृप्त होओ !' सुनते ही गोविन्ददासजी तो आश्चर्य-सागरमें डूब गये, आँखें फिराकर देखा तो उन्हें एक परम सुन्दर तेजस्वी ब्राह्मणमूर्ति भोजनका थाल हाथमें लिये खड़ी दिखायी दी । ब्राह्मणको देखकर गोविन्ददासजीको बड़ा आनन्द हुआ । उन्होंने थाल ले लिया । अन्नकी सुगन्धसे उनका मन हरा हो गया, गरमागरम सुवासित खिचड़ी देखकर उन्हें बड़ा अचरज हुआ । वे शरीरकी सुधि-बुधि भूल गये । नाँव-गाँव पूछना चाहते थे, परन्तु पूछ न सके, धीरे-धीरे खाने लगे । खिचड़ीमें अमृत, हृदयमें अमृत, खिचड़ी लानेवाले ब्राह्मणके नेत्रोंमें अमृत, आसपासके वातावरण-में अमृत—सारा वन अमृतमय हो गया । गोविन्ददासजी प्रेम-छके मस्त हुए खा रहे हैं, कुछ अन्न मुँहमें जाता है, कुछ जमीनपर गिरता है । भोजन समाप्त हुआ, परन्तु गोविन्ददास-जीकी अभी वही दशा है, जबान बन्द है ।

कुछ होश आया, पूछनेकी इच्छा जाग्रत् हुई, अस्पष्ट स्वरसे गोविन्ददासजीने कहा, 'कहिये, आप कौन हैं?' इतना कहते-

कहते उनका गला रुक गया। अब प्रभु-कृपासे उनको चेत हुआ, उन्होंने कहा, 'प्रभो! बस, अब मैंने आपको पहचान लिया। देवता भी जिनकी मायाके वशमें भूले रहते हैं, उनको इस पामर प्राणीने अबतक नहीं पहचाना, इसमें क्या आश्चर्य है? प्रभो! अब इस दीनको अपने असली स्वरूपके दर्शन कराकर प्राणोंको शीतल कीजिये।' भक्तकी सच्ची भावना देखकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हो गये। उन्होंने उनकी भक्तिकी प्रशंसा करते हुए अपना असली स्वरूप प्रकट किया। अहा! कैसा मनोहर-चित्ताकर्षक स्वरूप है? कैसी कनक-कमनीय कान्ति है? दिव्य गौर-सुन्दर शरीरकी कैसी अपूर्व शोभा है? पूर्ण चन्द्रको लजानेवाला कैसा मुखचन्द्र है? अहा! प्रभुकी कमलसदृश आँखें, उनके कान और नासिकाकी शोभा अवर्णनीय है। लाल-लाल अधरोंपर मन्द हास्य सौन्दर्यका सौन्दर्य है। प्रभुने सुन्दर पीत वस्त्र धारण कर रक्खे हैं, विशाल चौड़ी छाती है, केसरीके समान पतली कमर और भक्तभयहारी सुन्दर चरण-कमल हैं। हाथमें सूर्यको निष्प्रभ करनेवाला उज्ज्वल धनुर्बाण है। मस्तकपर अमूल्य रत्नजटित मुकुट है। अपूर्व रूपराशिके दर्शनकर गोविन्ददासजी मुग्ध हो गये। उनके नेत्रयुगल प्रेमाश्रुओंसे भर गये। अङ्ग-अङ्गमें आनन्द छलक उठा। उन्होंने हर्षपूरित हृदयसे गद्गद होकर कहा—'हे प्रभो! हे भक्तवत्सल!! आपके चरणोंमें मेरा बार-बार प्रणाम है। मैं महामूर्ख हूँ, अज्ञानी हूँ, इसीसे आपकी भक्तवत्सलताको आजतक

नहीं जान सका। हे दयामय! आज मैं आपकी कृपासे कृतार्थ हो गया।' यों बोलते-बोलते, गोविन्ददासजीको प्रेमसमाधि हो गयी। जैसे चन्द्रकान्तमणि चन्द्रमाको देखते ही पिघल जाती है, इसी प्रकार प्रभुको देखकर प्रभुभक्त गोविन्ददासजीका हृदय पिघल गया। उनके हृदयसे माया-ममता और मोहका सर्वथा नाश हो गया। अभिमान सदाके लिये जाता रहा। प्रेमावेशमें गोविन्ददासजी श्रीलक्ष्मणजीके चरणोंमें लिपट गये। उनका सारा शरीर प्रभुमय हो गया, भेद-भाव जाता रहा, साथ ही उनकी जीवन-लीला भी पूरी हो गयी। मिट्टीकी देह मिट्टीमें मिल गयी और पवित्र आत्मा भगवान्के साथ ही परम धाममें पहुँच गया। यकायक सारा अरण्य विमल ज्योतिसे जगमगा उठा। वनके पशु-पक्षी, कीट-पतंग, आनन्द-ध्वनि करने लगे। वह आनन्दकी शब्द-लहरी वनभूमिके प्रत्येक वृक्ष, कुञ्ज, लता, पत्र, फल और फलोंमें लहराती हुई—उनके साथ क्रीड़ा करती हुई—सर्वत्र फैल गयी। भक्तकी दिव्य गति देखकर सारा वन-प्रदेश भक्त और भगवान्के जय-जयकारसे गूँज उठा।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

भक्त हरिनारायण

परमेश्वरके सच्चे भक्त अपने प्रभुकी भक्तिका प्रचार कर संसार-सागरकी तरंगोंमें डूबते हुए दुखी जीवोंके कष्टोंको दूर करनेके लिये ही इस पृथिवीतलपर आया करते हैं। श्रीहरिनारायणजी भी एक ऐसे ही भक्त थे। आपका जन्म महाराष्ट्र-प्रान्तमें हुआ था। आज इनके ही पवित्र जीवनकी कुछ घटनाओंका वर्णनकर लेखनीको धन्य करना है। इनका नाम नीराजी या नाभाजी था। पिता नारायणराव देशपाण्डेने इन्हें अपने छोटे भाई अनन्तरावको उनके कोई सन्तान न होनेके कारण दत्तक दे दिया था। अनन्तरावने इनका नाम बदलकर हरिनारायण रख लिया। ये अपने चचाके पास बड़े आनन्दसे रहने लगे।

भक्त हरिनारायण

कुछ समय बीतनेपर अनन्तरावके एक पुत्र उत्पन्न हो गया, इससे उसकी बालक हरिनारायणपर मनोवृत्ति बदल गयी। प्रेमकी जगह विरोधने स्थान कर लिया। धीरे-धीरे इस विरोधने उग्र रूप धारण किया। एक दिन जब हरिनारायण भोजन कर रहे थे तो बिना ही किसी अपराधके अनन्तरावने उनका हाथ पकड़कर यह कहते हुए घरसे निकाल दिया कि 'अब कभी अपना मुँह हमें न दिखलाना।' बालक हरिनारायण लड़कपनसे ही बड़े सरल स्वभावके थे, बाहरी जगत्से बहुत कम सम्बन्ध रखकर ये सदा आन्तरिक वृत्तियोंका सुधार करनेमें ही लगे रहते थे। अतः घरसे निकाले जानेपर उन्हें तनिक भी दुःख नहीं हुआ, वरं यह सोचकर उन्हें उलटा आनन्द हुआ कि अच्छा हुआ, अब अपना सारा समय परम पिता परमेश्वरके पवित्र स्मरणमें ही लग सकेगा।

वे वहाँसे अपने पिताके घर आये। पिताने भी झुँझलाकर उन्हें जङ्गलकी राह बता दी। इसका कारण यह था कि आठों पहर भगवद्भजनमें लगे रहनेके कारण घरके लोग इनको बिल्कुल निकम्मा समझते थ। बालक हरिनारायण पिताकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर माताका आशीर्वाद लेने गये। माताका हृदय विलक्षण होता है। स्नेहमें भगवान्‌के बाद दूसरा नम्बर माताका ही है। बालक कितना ही मूर्ख, निकम्मा या दुष्ट क्यों न हो, माँके लिये तो वह 'लाल' ही है। संसार बदल जाय पर माँका स्नेहपूर्ण

हृदय नहीं बदल सकता । पुत्रकी शोचनीय अवस्थाको देखकर माताका हृदय बिंध गया परन्तु वह सच्ची माता थी, मोहको छोड़कर पुत्रके यथार्थ हितके लिये हरिनारायणको समझाने लगी । उसने कहा, 'बेटा ! पिताके कहेका बुरा मत मानो, इस अनित्य संसारके सभी लोग दुःखपूर्ण विषयोंमें फँसे हैं । पाप-पुण्यका किसीको खयाल नहीं है । सच्चा सुख शान्तिमें मिलता है और शान्ति इस जगत्से उपराम होनेपर प्राप्त होती है, यही योगका भूषण एवं चित्तके समाधानका असली कारण है । अतएव तुम मेरे पास रहकर धीरे-धीरे विषयोंसे मनको हटा लो और शान्तिको प्राप्त करो ।' माताके अमृतमय विवेकभरे वचनोंको सुन बालक हरिनारायणके हृदयमें विवेकवृक्षका अंकुर पैदा हो गया । वह माताके वात्सल्यपूर्ण आग्रहसे घरहीपर रह गये ।

कुछ समय बाद इनके माता-पिताने काशीधामकी यात्राका विचार किया । और घरका सारा भार हरिनारायणपर छोड़कर वे काशी चले गये । भक्त हरिनारायण घरका काम करने लगे । हरिनारायण बड़े ही दयालु और उदार स्वभावके पुरुष थे । माता-पिताकी अनुपस्थितिमें वे धनके द्वारा गरीब अनाथोंकी सेवा करने लगे । उनके घरपर नित्य ब्राह्मण-भोजन, भजन-पूजन और हरि-कीर्तन आदिका समारोह रहने लगा । धीरे-धीरे घरकी सारी सम्पत्ति सेवामें लग गयी । धनका सदुपयोग हो गया । इधर पिता भी काशी-यात्रासे लौट आये । उन्हें जब धन-धान्यादिके

इस प्रकार खर्च हो जानेका पता लगा तो उनके क्रोधका पार न रहा। वे हरिनारायणको बुलाकर कहने लगे कि 'अरे, तुझे क्या इसीलिये घर सौंपा गया था? जा, मुँह काला करके अभी मेरे घरसे निकल जा, एक क्षण भी यहाँ रहा तो तुझे मेरी सौगन्द है।' भक्तको और क्या चाहिये? वह तो हर-हालतमें मस्त रहता है और प्रत्येक स्थितिको अपने प्रभुका विधान समझकर आनन्दमग्न रहता है। वह घरमें रहे या वनमें, उसके लिये दोनों ही जगह समान हैं।

भक्त हरिनारायण माता-पिताको प्रणामकर वनको चल दिये। अन्नपूर्णा भी योग्य पतिकी योग्य पत्नी थी। पतिको वनवासी होते देख, वह घरमें कैसे रहती? उसने भी पतिका अनुसरण किया। हरिनारायणने जब पत्नीको अपने पीछे आते देखा तो उसे घर लौट जानेको कहा। अन्नपूर्णाके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये, पतिके चरणोंमें गिरकर बड़े ही नम्र शब्दोंमें प्रार्थना करते हुए उसने कहा—'प्राणेश्वर! आप संसारसे उपराम होकर मेरा भी त्याग कर रहे हैं, पर बतलाइये, आपके बिना मैं अकेली यहाँ कैसे अपना जीवन बिताऊँगी? मेरा मन घरमें कैसे लगेगा? नाथ! मुझे छोड़कर न जाइये, मेरी अवस्था मछलीको जल-सरोवरसे निकालकर दुग्ध-सागरमें फेंकनेके समान हो जायगी।' पत्नीके करुणाभरे वचनोंको सुन हरिनारायणका हृदय पिघल गया। उन्होंने प्रेमसे कहा—'मेरा कठोर शरीर वनके कष्टों-

को सह लेगा, पर तुम्हारा यह कोमल शरीर वनके योग्य नहीं है, तुम सुकुमार हो, मेरे साथ वनके कष्टोंको क्यों सिरपर उठाने जा रही हो ? व्यर्थके कष्ट भोगनेसे क्या लाभ ? अपने पिताके घर जाकर रहो, वे बड़े धनी हैं, तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होने देंगे।' अन्नपूर्णासे अब नहीं रहा गया, वह रोने लगी, उसने कहा—'प्राणनाथ ! आप अपने हाथसे मुझे मार भले ही डालिये, परन्तु इस प्रकार वियोगाग्निके भयानक अग्निकुण्डमें फेंककर न जाइये। सुख-दुःखोंका भोग प्रारब्धके अधीन है। आपके भाग्यमें दुःख है तो मुझे सुखकी कोई आवश्यकता नहीं, मैं उन दुःखोंको बड़े आनन्दसे सुखरूपमें ही स्वीकार करूँगी। पर मैं आपके विरहका दुःख नहीं सह सकती। क्या आप मुझे अकेली निस्सहाय छोड़ वनको चले जायँगे ? नाथ, ऐसे कठोर क्यों हो गये ?' अन्नपूर्णाका गला रुँध गया, आगे उससे कुछ नहीं कहा गया। वह पतिके चरणोंको जोरसे पकड़कर, सिसक-सिसककर रोती हुई आँसुओंसे उनको धोने लगी। पत्नीकी एकनिष्ठाका इस प्रकार परिचय मिलनेपर हरिनारायणकी कृत्रिम कठोरता दूर हो गयी। वह अब 'ना' नहीं कर सके। अन्नपूर्णाके विशुद्ध भावको देखकर उनके दयालु हृदयने उसे साथ चलनेकी आज्ञा दे दी। प्रेमसे अन्नपूर्णाको उठाकर उन्होंने साथ ले लिया।

भक्त हरिनारायणके गाँव छोड़नेकी बात थोड़े ही समयमें चारों ओर फैल गयी। गाँवके लोगोंकी उनपर बड़ी श्रद्धा थी।

वे उनको साक्षात् नारदजीका अवतार मानते थे। उनकी दयालुता, प्रेम एवं निःस्वार्थ सेवाने गाँवके लोगोंके हृदयोंपर अधिकार कर लिया था। अतः उनके वन जानेकी खबर पाते ही लोग उनके दर्शनके लिये दौड़ पड़े। गाँवके बाहर एक सुन्दर वृक्षके नीचे बैठे हुए भक्त-दम्पतीको देखकर, सबने बड़े आदरसे प्रणाम किया एवं उनसे घर लौटनेके लिये प्रार्थना की। पर हरिनारायण पितृ-आज्ञाकी अवहेलना कैसे करते? उन्होंने सब ग्रामवासियोंको समझाकर कहा कि 'प्यारे भाइयो! मुझे पिताजीकी आज्ञा वनमें जानेकी है, अतः उसकी अवज्ञा कर घर चलनेके लिये आप मुझे न दबावें।' लोगोंने वहीं डेरा लगा दिया। तीन दिन-तक बराबर हरि-कीर्तनकी धूम मची रही, बड़े उत्साहसे लोगोंनें भगवान्के मधुर कीर्तनका रसास्वादन किया, फिर हरिनारायणने सबको समझाकर घर लौटा दिया। अन्नपूर्णाने पूर्णाहुतिके तौरपर गरीबोंको पतिकी आज्ञासे अपने सारे गहने उतार कर दे दिये। जिसने घरके सारे सुखोंका त्यागकर, वनके कठोर दुःखोंको सादर ग्रहण किया, वह इन आभूषणोंको रखकर क्या करती?

वहाँसे पति-पत्नी काशी, प्रयाग, गया आदि पवित्र तीर्थोंका भ्रमण करते हुए 'जोगाइचे आवे' नामक ग्राममें लौट आये। अन्नपूर्णाको वहाँ रखकर हरिनारायण वनमें कुटिया बनाकर उपासना करने लगे। बारह वर्षकी कठोर तपस्याके फलस्वरूप उन्हें भगवतीका साक्षात्कार हुआ। भगवतीने आज्ञा दी कि

'तू नरसिंहपुरमें चला जा, वहाँ तुझे सद्गुरुकी प्राप्ति होगी एवं उन्हींकी कृपासे भगवत्साक्षात्कार होगा।' देवीकी आज्ञानुसार हरिनारायण अन्नपूर्णाको साथ ले नरसिंहपुर चले आये।

एक दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर हरिनारायण संगमस्थलपर स्नान करने गये। स्नान करके जलमें ही वे भगवान्‌का ध्यान करने लगे। उसी समय नदीमें बाढ़ आ गयी और वे वहीं डूब गये। लोगोंने यह खबर अन्नपूर्णाको दी। पतिव्रता सतीका हृदय पतिकी अमङ्गल-आशंकासे शोकाकुल हो गया। वह पतिकी प्राणरक्षाके लिये श्रीनृसिंह भगवान्‌से प्रार्थना करने लगी। इधर भक्त हरिनारायणकी अवस्था विचित्र थी। वे ध्यानमें इतने तल्लीन हो गये थे कि उन्हें इन सब बातोंका पता ही नहीं था। ध्यानकी तल्लीनताने भगवान्‌के आसनको हिला दिया। वे भक्तके हार्दिक अनन्य प्रेमके अधीन थे, साक्षात् देवर्षि नारदके रूपमें वहाँ प्रकट हो गये। भक्त हरिनारायण दृढ़ समाधि लगाये प्रेममें मस्त हो रहे थे; उन्हें नारदजीके आगमनका पता नहीं लगा। उस प्रेममयी अवस्थाको देख नारद प्रसन्न हो गये, उन्होंने भगवान्‌का मधुर कीर्तन सुनाकर उन्हें सावधान किया और ब्रह्मवीणाद्वारा 'तत्त्वमसि' का उपदेश देकर वे वहाँसे चले गये।

सात दिनतक बाढ़का जोर रहा, फिर जल कम हो गया। ग्रामवासी, जहाँ हरिनारायण डूबे थे उन्हें खोजने आये और वहाँके पवित्र दृश्यको देखकर मुग्ध और आश्चर्यचकित हो

गये । भक्त हरिनारायण वीणा एवं करताल लिये भगवान्‌के नाम-कीर्तनमें मस्त हो रहे हैं । उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है । सबने उनको प्रणाम किया एवं बड़े आग्रहसे उन्हें नृसिंहजीके मन्दिरमें ले गये । सती अन्नपूर्णा भी पतिके आनेकी खबर पाकर मन्दिरमें जाकर पतिके चरणोंमें गिर पड़ी ।

तदनन्तर भक्त हरिनारायण एक वर्षतक नरसिंहपुरमें रहे । हजारों मनुष्योंको उन्होंने भगवान्‌का पवित्र चरित्र सुनाकर भक्ति-मार्गपर लगाया । वहाँसे वे घराशीव नामक ग्राममें आकर, वहाँकी गुफामें थोड़े दिन रहे । फिर तीर्थयात्राके लिये चल पड़े । प्रत्येक आषाढ़ी एकादशीको उनका पण्ढरपुर जानेका नियम था । एक बार जब वे पण्ढरपुर जा रहे थे तो संयोगवश उसी दिन नदीमें बहुत जोरकी बाढ़ आ गयी । घाटपर नौका नहीं थी, एकादशीका समय भी बीत रहा था, अतः अन्य कोई उपाय न देख उन्होंने अपना मृगासन जलपर बिछा दिया एवं उसीपर सिद्धासन लगाकर उस पार चले गये । दोनों ओर नदी-तटपर खड़े हुए साधु-सन्तों एवं ग्रामवासियोंको यह चमत्कार देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ एवं भक्त हरिनारायणपर सबकी श्रद्धा बढ़ गयी । वे पण्ढरपुरमें आकर मन्दिरमें दर्शनको गये, उस समय एक ऐसी घटना हुई, जिसने लोगोंको और भी आश्चर्यमें डाल दिया । उस घटनाको कविके शब्दोंमें ही सुनिये—

घेतलें पांडुरंग दर्शन, प्रेमें केली प्रदक्षिणा,
जयजयकार झाला पूर्ण, पंढरपुरीं तें कालीं ।

साक्षात् पूर्ण परब्रह्म भगवान। येऊनि स्वामीसि बोलता जाण,
म्हणे तुमची वारी पावली संपूर्ण। प्रेमालिंगन दीधलें।
कार्तिकी आषाढी एकादशी। आम्हीं येऊं तुम्हां पासीं,
भाक देऊनि स्वामी सी। जाते झाले राउकी॥

'उन्होंने पण्ढरपुरमें आकर भगवान् पाण्डुरंगके दर्शन करके उनकी प्रदक्षिणा की, सब साधु-सन्तोंने भगवान्‌का जय-जयकार किया। उसी समय पूर्ण ब्रह्म पाण्डुरङ्गने प्रकट होकर भक्त हरिनारायणसे प्रेमालिङ्गन किया एवं कहा कि 'तुम्हारी वारी* मुझे पूर्णरूपसे मिल चुकी। मैं हरिशयनी एवं हरिबोधिनी एकादशीको तुम्हारे पास आ जाया करूँगा।' इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। तबसे भक्त हरिनारायण आषाढ़ी तथा कार्तिकी एकादशीका महोत्सव अपने घरपर ही करने लगे।

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर एक बार हरिनारायणने शेषाद्रि, सेतुबन्ध रामेश्वर आदि तीर्थोंकी यात्रा की। उस समय घूमते हुए वे समर्थ रामदास, स्वामी रङ्गनाथ, स्वामी जयराम, तुकाराम महाराज आदि सन्तोंके दर्शन करके अपनी कन्या भीमाबाईके घर आये। यहाँ उन्होंने अपने अन्तकालका समय नजदीक बतलाकर सबको सचेत कर दिया। सती अन्नपूर्णा पतिके भावी

---

* आषाढ़ी एकादशीको नियमितरूपसे पाण्डुरंगके दर्शनार्थ जानेका नाम 'वारी' है।

वियोगके दुःखसे व्याकुल होकर पतिकी आज्ञा ले पहले ही अपने नश्वर शरीरको छोड़कर परमधामको चली गयी। भक्त हरिनारायण वहाँसे 'वैनवड़ी' नामक ग्राममें आये। वहाँ उनको गंगास्नानकी इच्छा हुई। भक्तकी इच्छाका भागीरथी गंगा तिरस्कार न कर सकीं। स्वयं प्रकट हो गयीं एवं भक्तकी इच्छाको पूर्ण किया। भक्त हरिनारायण गंगास्नान करके सन्ध्या-तर्पण-देवार्चनादिसे निवृत्त हुए। गीतामें वर्णित आसनसे बैठकर वे योगमार्गके अनुसार प्राणको खींचने लगे। उस समय उनका शरीर दिव्य कान्तिसे तपाये हुए सुवर्णके समान चमकने लगा। उनके शरीरके अलौकिक तेजसे चारों ओर प्रकाश फैल गया। नेत्रोंकी अर्धोन्मीलित अवस्था थी। तदनन्तर वे पूर्ण समाधिमें स्थित होकर ब्रह्ममें लीन हो गये। इस प्रकार शाके १६४७ में 'वैनवड़ी' ग्राममें उन्होंने अन्तिम समाधि ली।

इनके शिष्योंकी बहुत-सी शाखाएँ महाराष्ट्रमें फैली हुई हैं। भक्ति, ज्ञान, वैराग्यसम्बन्धी बहुत-से पद्योंकी भी इन्होंने रचना की थी, जो अभी प्रायः अमुद्रित ही हैं।

श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुर

की

पुस्तकोंकी संक्षिप्त

सूची

आषाढ़ १९९२

---

(१) पुस्तकोंका विशेष विवरण तथा पूरा नियम जाननेके लिये बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये ।

(२) हमारे यहाँ अनेक प्रकारके धार्मिक छोटे, बड़े, रंगीन और सादे चित्र मिलते हैं । विशेष जानकारीके लिये चित्र-सूची मुफ्त मँगाइये ।

कुछ ध्यान देने योग्य बातें—

(१) हर एक पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला बहुत साफ देवनागरी अक्षरोंमें लिखें। नहीं तो जवाब देने या माल भेजनेमें बहुत दिक्कत होगी। साथ ही उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिये।

(२) अगर ज्यादा किताबें मालगाड़ी या पार्सलसे मँगानी हों तो रेलवेस्टेशनका नाम जरूर लिखना चाहिये। आर्डरके साथ कुछ दाम पेशगी भेजने चाहिये।

(३) थोड़ी पुस्तकोंपर डाकखर्च अधिक पड़ जानेके भयसे एक रुपयेसे कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती, इससे कमकी किताबोंकी कीमत, डाकमहसूल और रजिस्ट्री-खर्च जोड़कर टिकट भेजें।

(४) एक रुपयेसे कमकी पुस्तकें बुकपोस्टसे मँगवानेवाले सज्जन ।) तथा रजिस्ट्रीसे मँगवानेवाले ।=) (पुस्तकोंके मूल्यसे) अधिक भेजें। बुकपोस्टका पैकेट प्रायः गुम हो जाया करता है; अतः इस प्रकार खोयी हुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

कमीशन-नियम

१) से कमकी पुस्तकोंपर कमीशन नहीं दिया जाता। १) से १०) तक १२॥) सैकड़ा, फिर २५) तक १८॥) सैकड़ा, इससे ऊपर २५) सैकड़ा दिया जाता है।

३०) की पुस्तकें होनेसे ग्राहकको रेलवेस्टेशनपर मालगाड़ीसे फ्री डिलेवरी दी जायगी, परन्तु सभी प्रकारकी पुस्तकें लेनी होंगी, केवल गीता नहीं। दीपावलीसे दीपावलीतक १०००) नेटकी पुस्तकें सीधे आर्डर भेजकर लेनेवालोंको ३) सैकड़ा कमीशन और दिया जायगा। जल्दीके कारण रेलपार्सलसे मँगवानेपर आधा भाड़ा दिया जायगा। इससे अधिक कमीशनके लिये लिखा-पढ़ी न करें।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीश्रीविष्णुपुराण—हिन्दी-अनुवादसहित, आठ सुन्दर चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही अर्थ हैं, साइज २२×२९ ८ पेजी, पृष्ठ ५४८, मू० साधारण जिल्द २॥), कपड़ेकी जिल्द २॥।)

अध्यात्मरामायण—सटीक, ८ चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही अर्थ है, दूसरा संस्करण छप गया है। मू० १॥।), स० २)

प्रेम-योग—सचित्र, लेखक—श्रीवियोगी हरिजी, पृष्ठ ४२०, बहुत मोटा एण्टिक कागज, मूल्य अजिल्द १।), सजिल्द ... १॥)

श्रीतुकाराम-चरित्र—दक्षिणके एक प्रसिद्ध सन्तका पावन चरित्र है, ९ सादे चित्र, पृष्ठ ६९४, सुन्दर छपाई, ग्लेज कागज, मू० १≡) स० १॥)

श्रीकृष्ण-विज्ञान अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीताका मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद। दो चित्र, पृष्ठ २७५, मोटा कागज, मू० ॥।), स० १)

विनय-पत्रिका—सरल हिन्दी-भावार्थ-सहित, ६ चित्र, अनु० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, २रा संस्करण, भावार्थमें अनेकों आवश्यक संशोधन किये गये हैं तथा परिशिष्टमें कथाभागके ६७ पृष्ठ और जोड़ देनेपर भी मूल्य १), सजिल्द १।)

गीतावली—सटीक अनु०—श्रीमुनिलालजी इसमें रामायणकी तरह सात काण्डोंमें श्रीरामचन्द्रजीकी लीलाओंका भजनोंमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। पृष्ठ ४६०, ८ चित्र, मू० १) सजिल्द १।)

भक्तराज प्रह्लाद—२ रङ्गीन, ५ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ ३४०, मोटे अक्षर, सुन्दर छपाई, मूल्य १) सजिल्द ... १।)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)—सचित्र, श्रीचैतन्यदेवकी बड़ी जीवनी। पृष्ठ २६०, मू० ॥।=), सजिल्द १=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड २)—सचित्र, पहले खण्डके आगेकी लीलाएँ। पृष्ठ ४५०, ९ चित्र, मूल्य १=), सजिल्द १।=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड ३), पृष्ठ ३८४, ११ चित्र, मूल्य १), सजिल्द १।)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली—(खण्ड ४) पृष्ठ २२४, चित्र १४, मू० ॥=) सजिल्द ॥।=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली—(खण्ड ५) पृष्ठ २८०, चित्र १०, मू०॥।) स० १)

श्रीएकनाथ-चरित्र—ले०—हरिभक्तिपरायण पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, भाषान्तरकार—पं० श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे । हिन्दीमें एकनाथ महाराजकी जीवनी अभीतक नहीं देखी, मूल्य ... ॥)

दिनचर्या—(सचित्र) उठनेसे सोनेतक करनेयोग्य धार्मिक बातोंका वर्णन । नित्य-पाठके योग्य स्तोत्र और भजनोंसहित । मूल्य ॥)

विवेक-चूडामणि—(सानुवाद, सचित्र) पृष्ठ २२४, मू० ।≈), स० ॥≈)

श्रीरामकृष्ण परमहंस—(सचित्र) इस ग्रन्थमें इन्हींके जीवन और ज्ञानभरे उपदेशोंका संग्रह है। पृ० २५०, मूल्य ... ।≈)

ईशावास्योपनिषद्—सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित, सचित्र पृष्ठ ५० मू० ≡)

केनोपनिषद्—सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित सचित्र पृष्ठ १४६ मूल्य ॥)

कठोपनिषद्—सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित सचित्र पृष्ठ १७२ मूल्य ॥-)

मुण्डकोपनिषद्—सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १३२, मू० ।≡)

प्रश्नोपनिषद्—सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित, सचित्र पृष्ठ १३०, मूल्य ।≡)

उपरोक्त पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) मूल्य २।-)

भक्त-भारती—७ चित्र, कवितामें ७ भक्तोंकी सरल कथाएँ, मू० ।≡)

भक्त बालक—गोविन्द, मोहन आदि बालकभक्तोंकी कथाएँ हैं ।-)

भक्त नारी—स्त्रियोंमें धार्मिक भाव बढ़ानेके लिये बहुत उपयोगी कथाएँ हैं।-)

भक्तपञ्चरत्न—यह पाँच कथाओंकी पुस्तक गृहस्थोंके लिये बड़े कामकी है।-)

आदर्श भक्त—राजा शिबि, रन्तिदेव, अम्बरीष आदिकी कथाएँ, ७चित्र, मू० ।-)

भक्त-चन्द्रिका—भगवान्‌के प्यारे भक्तोंकी मीठी-मीठी बातें, ७चित्र, मू० ।-)

भक्त-सप्तरत्न—सात भक्तोंकी मनोहर गाथाएँ, ७ चित्र, पृष्ठ १०६, मू० ।-)

भक्त-कुसुम—छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सबके पढ़ने योग्य प्रेमभक्तिपूर्ण ग्रन्थ ।-)

प्रेमी भक्त—८ चित्रोंसे सुशोभित, मूल्य ... ।-)

यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ—२ चित्रोंसे सुशोभित, मूल्य ... ।)

गीतामें भक्ति-योग—(सचित्र) लेखक—श्रीवियोगी हरिजी, मू० ।-)

प्रेम-दर्शन—(देवर्षि नारदरचित भक्तिसूत्र) सचित्र, सार्थ, सटीक ।-)

परमार्थ-पत्रावली—श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके ५१ कल्याणकारी पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ १४४, एण्टिक कागज, मूल्य ... ।)

माता—श्रीअरविन्दकी अंगरेजी पुस्तक (Mother) का अनुवाद, मू० ।)

मुनिकी टेर—(सचित्र) लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी, मू० ।)

ज्ञानयोग—श्रीभवानीशंकरजीके ज्ञानयोगसम्बन्धी उपदेश, पृष्ठ १२९, मू० ।)

ब्रजकी झाँकी—लगभग ४० चित्र, मूल्य ... ।)

श्रीबदरी-केदारकी झाँकी—सचित्र, मूल्य ... ।)

कल्याण

भक्ति, ज्ञान, वैराग्यसम्बन्धी सचित्र धार्मिक मासिक पत्र,

वार्षिक मूल्य ४≈)

कुछ विशेषांक

रामायणाङ्क—पृष्ठ ५१२, तिरंगे-इकरंगे १२७ चित्र, मू० २॥≡), स० ३≡)
शिवाङ्क—तीसरे वर्षकी पूरी फाइलसहित, मूल्य ४≈), सजिल्द ४॥≡)
शक्त्यङ्क सपरिशिष्टाङ्क—पृष्ठ ८८६, चित्र २८७, मू० ४), स० ४॥)
,, — आठवें वर्षकी पूरी फाइलसहित, मू० ४≈), स० ५।-)
वेदान्त-अङ्क सपरिशिष्टाङ्क—पृ० ७००, चित्र २१०, मूल्य ३), स० ३॥)
संतांक सपरिशिष्टांक—पृष्ठ लगभग ८०० और चित्र लगभग २००, मू० ३) स० ३॥)

(इनमें कमीशन नहीं है, डाक-महसूल हमारा)

व्यवस्थापक—कल्याण, गोरखपुर

चित्र

छोटे, बड़े, रंगीन और सादे धार्मिक चित्र

श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीविष्णु और श्रीशिवके दिव्य दर्शन !

जिनको देखकर हमें भगवान् याद आवें, वह वस्तु हमारे लिये संग्रहणीय है। भक्तों और भगवान्‌के स्वरूप एवं उनकी मधुर मोहिनी लीलाओंके सुन्दर दृश्य-चित्र हमारे सामने रहें तो उन्हें देखकर थोड़ी देरके लिये हमारा मन भगवत्स्मरणमें लग जाता है।

ये सुन्दर चित्र किसी अंशमें इस उद्देश्यको पूर्ण कर सकते हैं। इनका संग्रहकर प्रेमसे जहाँ आपकी दृष्टि नित्य पड़ती हो, वहाँ घरमें, बैठकमें और मन्दिरोंमें लगाइये एवं चित्रोंके द्वारा भगवान्‌को याद कर अपने मन-प्राणको प्रफुल्लित कीजिये।

हमारे यहाँ १८×२२, १५×२०, १०×१२, ७॥×१० और ५×७॥ के बड़े और छोटे चित्र सस्ते-सस्ते दामोंमें मिलते हैं।

चित्रोंकी सूची अलग मुफ्त मँगाइये।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

सब अवस्थाओंमें परमात्माके स्वरूपका अनुभवकर भक्त कहता है—

राग—भैरवी, ताल—धुमाली।

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ॥
नाथ! छिपा लो तुम मुँह अपना चाहे अति अँधियारेमें।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें एक कोनेमें, जग सारेमें॥
रोग, शोक, धनहानि, दुःख, अपमान घोर, अति दारुण क्लेश।
सबमें तुम, सब ही है तुममें अथवा सब तुम्हरा ही वेष॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, तब फिर मैं किसलिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो, चरण पकड़ सानन्द मरूँ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी, दुःख-वेष धारण कर नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ॥

(पत्र-पुष्पसे)